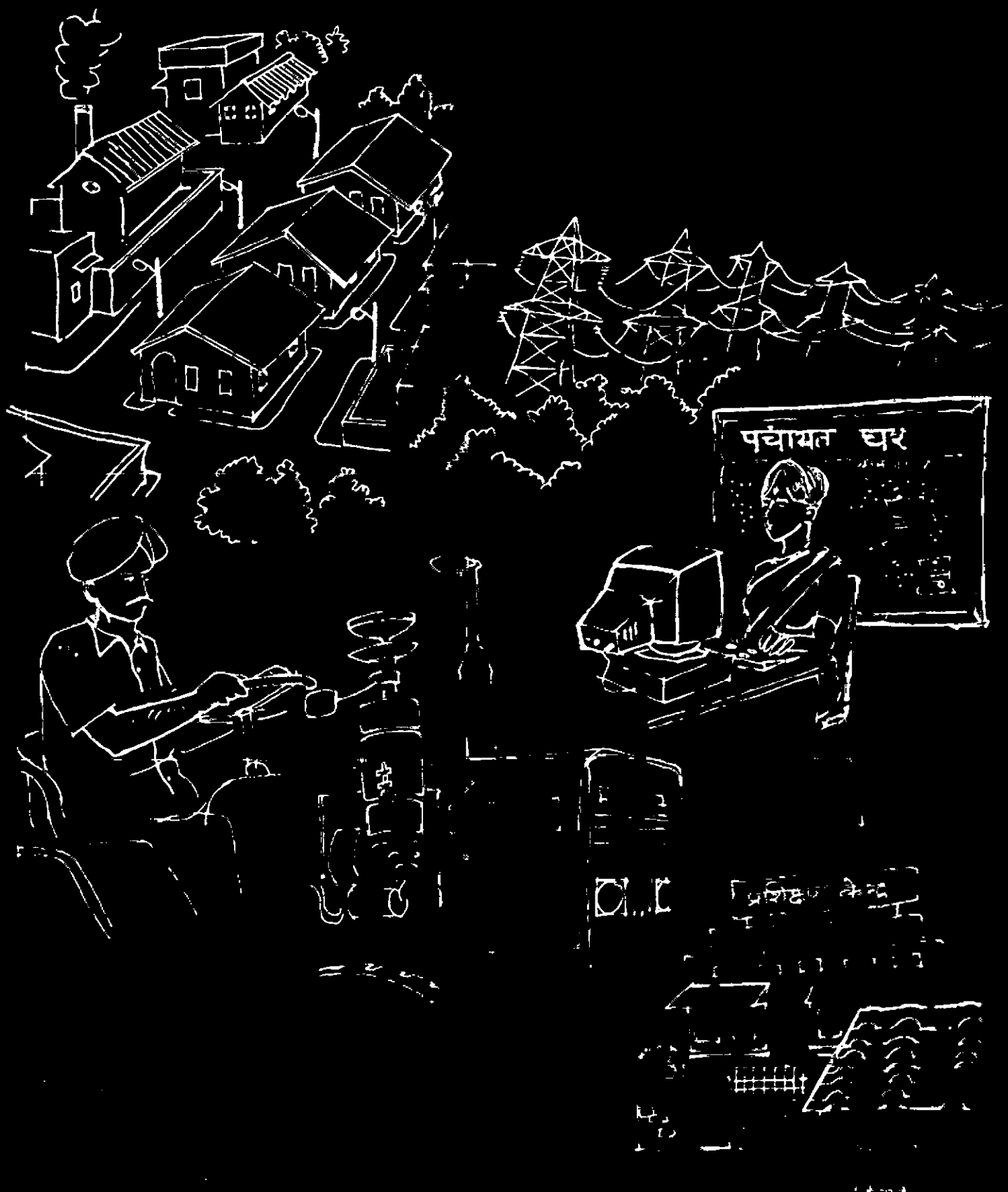
पंचायत घर

मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें गरीब से गरीब लोग भी यह महसूस करेंगे कि वह उनका देश है— जिसके निर्माण में उनकी आवाज का महत्व है। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें ऊंचे और नीचे वर्गों का भेद नहीं होगा और जिसमें विविध सम्प्रदायों में पूरा मेलजोल होगा। ऐसे भारत में अस्पृश्यता के या शराब और दूसरी नशीली चीजों के अभिशाप के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। उसमें स्त्रियों को वही अधिकार होंगे जो पुरुषों को होंगे।

—महात्मा गांधी

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय
की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष 43 | अंक 10 | श्रावण-भाद्रपद 1920 | अगस्त 1998

कार्यकारी संपादक
बलदेव सिंह मदान

उप संपादक
रजनी

संपादकीय पता
संपादक, 'कुरुक्षेत्र', ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय,
कृषि भवन, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 3015014
फैक्स : 011-3015014
तार : ग्राम विकास

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

विज्ञापन प्रबंधक
के.एस. जगन्नाथ राव

आवरण सज्जा
सलिल शैल

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत, विज्ञापन और प्रसार संख्या प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक-4, लेवल-7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110 066 से करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक-4, लेवल-7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110 066 से संपर्क करें। फोन : 6105590

मूल्य एक प्रति : पांच रुपये
वार्षिक शुल्क : 50 रुपये
द्विवार्षिक : 95 रुपये
त्रिवार्षिक : 135 रुपये

हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी प्रकाशित इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

इस अंक में

- **पिछले 50 वर्ष की उपलब्धियां और भावी संभावनाएं** — सुन्दर लाल कुकरेजा — 3
- **गांवों में सार्थक बदलाव : समता, संरक्षण और सहयोग** — भारत डोगरा — 7
- **भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में विदेशी विदुषियों की भागीदारी** — आशारानी व्होरा — 9
- **ग्राम्य जीवन : कल, आज और कल** — डा. नवीन चन्द्र जोशी — 13
- **पंचायती राज : अब तक और अगले डेढ़-दो दशक तक** — डा. महीपाल — 17
- **स्वतंत्रता के पचास वर्ष और सफाईकर्मी वर्ग की स्थिति** — संदीप जोशी — 20
- **परिन्दे (कहानी)** — दिलीप कुमार तेतरवे — 22
- **आजादी के पचास वर्ष और ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षिक विकास** — डा. अनिरुद्ध शरण मिश्र एवं डा. पी.एल. सरोज — 26
- **ग्रामीण आवास : समस्याएं और समाधान** — डा. कमलेश रानी — 31
- **घाघ और भड्डरी की सूक्तियां (स्थायी स्तम्भ)** — कुमार 'निर्मोही' — 35
- **ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती बाल मजदूरी** — नीलिमा कुंवर एवं वंदना वर्मा — 36
- **ग्रामीण विकास के नए क्षितिज** — डा. सुरेंद्र कुमार कटारिया — 39
- **ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में अनुसूचित जाति के सरपंचों को आने वाली बाधाएं** — रामनरेश वर्मा — 42
- **भारत की अमूल्य धरोहर : अमृत फल आंवला** — शैलेश त्रिपाठी — 46
- **कमर और पीठ दर्द से कैसे बचें** — डा. वीणापाणि सिंह — 47

पाठकों के विचार

पंचायती राज का सटीक और समग्र मूल्यांकन

कुरुक्षेत्र का अप्रैल 1998 अंक पंचायती राज व्यवस्था का सटीक, समग्र और निष्पक्ष मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। 73वें संविधान संशोधन के आधार पर लागू पंचायती राज व्यवस्था सत्ता का विकेंद्रीकरण कर स्थानीय स्तर तक सत्ता पहुंचाने का एक दूरदर्शितापूर्ण प्रयोग है, जो प्राय: सफल हो रहा है। परंतु यदि किंचित सतर्कता और बरती जाए, तो पंचायती राज शत-प्रतिशत सार्थक व सफल सिद्ध हो सकता है। बहरहाल आपने पंचायती राज पर व्यापक सामग्री प्रस्तुत कर अभिनंदनीय कार्य संपन्न किया है। बधाई स्वीकारें।

प्रो. शरद नारायण खरे, शासकीय कन्या महाविद्यालय, मंडला (म.प्र.)

ग्रामीण गरीबों के बारे में जानकारी उपलब्ध कराने का माध्यम

पिछले वर्ष की तथा इस वर्ष की *कुरुक्षेत्र* की पत्रिका पढ़कर ऐसा भान हुआ कि इस देश में कुछ ऐसे विद्वान पुरुष भी हैं जो न केवल ग्रामीण क्षेत्र की गरीबी, हृदय विदारक कष्ट, जल बिनु मीन पियासी जैसी स्थितियों के प्रति संवेदनशील हैं, बल्कि इसकी बारीक जानकारियों से बखूबी अवगत हैं तथा पत्रिका के माध्यम से आम जनता और सरकार को अवगत कराने का पुनीत कर्तव्य और साहस दिखा रहे हैं।

जैसा फरवरी 1998 के अंक में डा. रोहिणी प्रसाद के लेख *बाल भिक्षा प्रथा : बच्चों के लिए अभिशाप* से स्पष्ट है कि विश्व के बाल भिक्षुओं का पाचवां हिस्सा, भारत में हर तीसरे परिवार पर एक बाल श्रमिक तथा दसवें पर एक बाल भिक्षु है। जानकारियों के माध्यम से कुरुक्षेत्र की जनता की सेवा करने का वर्णन मैं शब्दों से नहीं कर पा रहा हूं।

रामसूरत मौर्य, ओवरा कालोनी, 8/245 ओवरा, सोनभद्र

पंचायती राज व्यवस्था पर विशेषांक : संग्रहणीय अंक

कुरुक्षेत्र अप्रैल 1998 अंक, जो पंचायती राज व्यवस्था का विशेषांक है, छापकर एक बार फिर आपने पाठकों का मान रखा है।

इसमें जगमोहन माथुर का लेख *पंचायती राज प्रणाली : एक लेखा-जोखा* वाकई उत्कृष्ट लगा। चित्रेश की लघुकथा *प्रेरणा* तो सचमुच जागृति साबित हो रही है। गुरु जी द्वारा खुद गलती करना और दूसरों को उपदेश देना बेहद दकियानूसी है।

कहानी *मुंशी जी* में डा. हरिकृष्ण देवसरे ने शिक्षा के प्रति जो मूलमंत्र फूंका है, वह अंधेरे में दीपक जलाने के समान है। मंजु पवार का लेख नारी अभिव्यंजना को मुखरित करते हुए, उसे चहारदीवारी से बाहर निकलने तथा अपने अधिकारों और समाज में उसके कर्तव्यों की ओर वास्तव में अभिप्रेरित कर रहा है। पपीते के बारे में विजय जी का लेख सुंदर है। कुल मिला कर यह अंक संग्रहणीय है।

अखिलेन्द्र नाथ, कुंज भवन, गोलाघाट, भागलपुर (बिहार)

कुरुक्षेत्र का श्रेष्ठतम प्रयास

कुरुक्षेत्र अप्रैल 1998 का विशेषांक पढ़ने पर पत्रिका की श्रेष्ठता का एहसास हुआ। नि:संदेह यह सर्वोत्तम प्रयास था। नई पंचायती राज व्यवस्था विशेषांक में चयनित लेखों का स्तर वास्तविक तौर पर ऊंचा कहा जा सकता है।

नई पंचायती राज व्यवस्था की लेखकों ने जो तसवीर पेश की है, उसे पंचायती राज व्यवस्था के लक्ष्य को देखते हुए सुखद नहीं कहा जा सकता है। वित्त का अभाव, ग्राम सभा पर ग्राम सचिव का नियंत्रण, बैठक संबंधी अनियमितता, महिला प्रतिनिधियों पर पुरुष आधिपत्य, ग्राम प्रतिनिधियों के प्रति सरकारी अधिकारियों द्वारा असम्मान की भावना—सभी समस्याएं ऐसी हैं, जो पंचायती राज व्यवस्था की सफलता की राह में कांटे के समान हैं। पंचायतों के समक्ष सबसे गंभीर समस्या वित्त की है। राज्य सरकारें भी इन समस्याओं के प्रति गंभीर नहीं दीखतीं। महात्मा गांधी का स्वप्न ग्राम स्वराज एवं नई पंचायती राज व्यवस्था के लक्ष्य को नौकरशाहों की उपेक्षा के कारण ग्रहण लगने का भय है।

संजय कुमार सिंह, ग्राम-चेचर, वैशाली, बिहार

सर्वांगीण विकास में हिस्सेदारी

अप्रैल 1998 में प्रकाशित डा. हरिकृष्ण देवसरे लिखित कहानी *मुंशी जी* वाकई आदर्श कहानी है। वास्तव में यदि मुंशी जी जैसे व्यक्ति हर निरक्षर गांव में मिलें, तो वो दिन दूर नहीं जब सभी साक्षर हो जाएंगे। मुंशी जी जैसे हितैषी व्यक्ति वास्तव में भी होने जरूरी हैं। डा. विजय कुमार द्वारा प्रस्तुत *पपीते के सेवन* में पपीते का इतिहास और उसकी किस्मों के बारे में बताया गया है। यह जानकारी हमारे लिए बहुपयोगी है। हरिशंकर शर्मा

(शेष पृष्ठ 34 पर)

शिक्षा

पिछले 50 वर्ष की उपलब्धियां और भावी संभावनाएं

सुन्दर लाल कुकरेजा

भारतीय संविधान की धारा 45 में राज्य का यह दायित्व माना गया है कि वह 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा सुविधा उपलब्ध कराए। पिछली आधी शताब्दी से हम संविधान के इस निर्देश और उसकी मूल भावना का पालन करने के लिए प्रयास करते आ रहे हैं। इस दौरान हमने अनेक उपलब्धियां और सफलताएं अर्जित की हैं। फिर भी, विडम्बना यह है कि भारत आज भी विश्व के सबसे अशिक्षित देशों में से एक है और संसार के एक तिहाई निरक्षर भारत में ही बसते हैं। यह स्थिति तब है जब हमने स्वतंत्रता से पहले ही शिक्षा के महत्व को समझ लिया था और उसके प्रसार के लिए योजनाएं बनानी शुरू कर दी थीं। संसार के अन्य देश, विशेषकर कोरिया और मलेशिया जैसे एशियाई देश जिन्होंने हमारे साथ ही विकास-यात्रा शुरू की थी, हमसे बहुत आगे निकल गए हैं और अगर हमने अपनी गति नहीं बढ़ाई तो हम पिछड़े ही रहेंगे।

शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ेपन का कारण हमारी उदासीनता नहीं है। 1937 में ही वर्धा शिक्षा समिति ने शिक्षा के प्रसार और उसे रोजगार देने वाले शिल्पों के साथ जोड़ने पर बल दिया था। आजादी के तत्काल बाद 1948 में डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में भारतीय शिक्षा आयोग का गठन किया गया था जिसने उस समय उपलब्ध शिक्षा सुविधाओं की सहायता और भावी जरूरतों को पूरा करने के लिए उच्च और तकनीकी शिक्षा के प्रसार की आवश्यकता रेखांकित की थी। माध्यमिक शिक्षा को मजबूत बनाने की सिफारिश 1952-53 में गठित डा. ए.एल. मुदालियार समिति ने की थी। 1958-59 में बनी महिला शिक्षा पर विचार के लिए दुर्गाबाई देशमुख समिति ने प्रौढ़ और ग्रामीण शिक्षा के लिए विशेष सुविधाओं का आग्रह किया था। 1964-66 में बने शिक्षा आयोग ने, जिसके अध्यक्ष प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा. दौलत सिंह कोठारी थे, एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति की सिफारिश की थी, जो 1968 में घोषित की गई थी। दो दशक बाद 1986 में एक और राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गई जिसमें 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा नि:शुल्क और अनिवार्य बनाने पर बल दिया गया था। महिला शिक्षा योजना 1988-2000 में भी बालिकाओं की शिक्षा पर विशेष जोर दिया गया।

सबके लिए शिक्षा का अर्थ 6 से 11 वर्ष तक के 5 वर्षों में प्राथमिक शिक्षा और 11 से 14 वर्ष तक उच्च प्राथमिक शिक्षा के तीन वर्षों की शिक्षा देना है। आठ वर्षों की यह नि:शुल्क शिक्षा अब तक की सभी पंचवर्षीय योजनाओं का मुख्य भाग रही है। यह लक्ष्य 1960 तक पूरा हो जाना चाहिए था लेकिन आज जब हम अगली शताब्दी के द्वार पर खड़े हैं, तब भी यह लक्ष्य अभी बहुत दूर दिखाई देता है। इतने वर्षों में हमने बहुत सारा मार्ग तय कर लिया है लेकिन अभी भी सफर बहुत लंबा है। हमने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो भी कदम उठाए हैं, उन्हें गरीबी, अशिक्षा और

बेरोजगारी तथा अंधविश्वासों और रूढ़ियों ने सफल नहीं होने दिया है। शहरों में शिक्षा का फिर भी प्रसार हुआ है किन्तु गांवों में कोई विशेष अंतर नहीं आया है। आर्थिक संसाधनों की तरह, शिक्षा के क्षेत्र में भी गांव और शहर का अंतर काफी विशाल है और यह अंतर लगातार बढ़ता जा रहा है।

आजादी के बाद की उपलब्धियां

स्वतंत्रता से पूर्व और पश्चात् की शैक्षिक उपलब्धियों में पर्याप्त अंतर है। पचास वर्ष के इस काल खंड में भारत में प्राथमिक स्कूलों की संख्या 1950-51 में 2,09,671 से बढ़कर 1970-71 में 4,08,378 और 1995 में लगभग 6 लाख हो गई। इन पचास वर्षों में शिक्षा पर होने वाले खर्च में भी वृद्धि हुई है। 1950-51 में सकल राष्ट्रीय उत्पाद का केवल 1.2 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च होता था। पहली पंचवर्षीय योजना में शिक्षा पर सिर्फ 153 करोड़ रुपये खर्च किए गए थे। पांचवीं योजना में यह खर्च 912 करोड़ और आठवीं योजना में 19,600 करोड़ रुपये हो गया। यह सकल राष्ट्रीय उत्पाद के 3.9 प्रतिशत के बराबर है। इसमें से लगभग आधा खर्च प्राथमिक शिक्षा पर हुआ। प्राथमिक स्कूलों में दाखिलों की संख्या भी काफी बढ़ी है। 1950-51 में पहली से पांचवीं कक्षा तक एक करोड़ 91 लाख दाखिले हुए थे। 1990-91 में यह संख्या बढ़कर 9 करोड़ 93 लाख और 1995-96 में 10 करोड़ 43 लाख हो गई। आजादी के बाद गांवों में दूर-दूर तक कोई स्कूल दिखाई नहीं देता था, आज 83.4 प्रतिशत गांव ऐसे हैं जहां गांव के अंदर ही या एक किलोमीटर के दायरे में प्राइमरी स्कूल खुल गए हैं। शिक्षकों की संख्या भी उसी अनुपात में बढ़ गई है।

इन सब सुविधाओं का लाभ यह हुआ है कि देश की काफी बड़ी निरक्षर जनसंख्या को पढ़ने-लिखने और साक्षर बनने का अवसर मिल सका है। 1951 में भारत में साक्षरता की दर केवल 18.3 प्रतिशत थी। 1991 में यह 52 प्रतिशत हो गई। 1951 में केवल सवा पांच करोड़ व्यक्ति पढ़-लिख सकते थे। आज 35 करोड़ लोग साक्षर हैं। यह जरूर चिंता का कारण है आज भी करीब 20 करोड़ भारतीय निरक्षर हैं और जो बच्चे स्कूलों में दाखिला लेते हैं, उनमें से करीब 40 प्रतिशत बच्चे विभिन्न कारणों से पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते हैं।

गांव-शहर का बढ़ता अंतर

शिक्षा सुविधाओं, शिक्षा पर अधिक खर्च और प्राथमिक स्कूलों में बढ़ते दाखिलों के बावजूद, शिक्षा के क्षेत्र में एक ओर गांव और शहरों के बीच तथा दूसरी ओर महिलाओं और पुरुषों के बीच का अंतर लगातार बढ़ता जा रहा है। देश की कुल जनसंख्या के अनुपात में जितनी संख्या में लोग स्कूल जा पाते हैं उससे औसतन एक व्यक्ति को दो वर्ष की शिक्षा मिल पाती है। इसमें ग्रामीण पुरुषों को 2.08 वर्ष की शिक्षा मिलती है जबकि महिलाओं की प्रति व्यक्ति शिक्षा मात्र 0.78 वर्ष यानी एक वर्ष से भी कम है। इसके विपरीत शहरी पुरुषों को 4.64 वर्ष और शहरी महिलाओं को 2.95 वर्ष की शिक्षा उपलब्ध है। कुल मिलाकर पुरुषों को 2.70 वर्ष तथा महिलाओं को उसके आधे से भी कम 1.28 वर्ष की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिल पाता है।

इस विशाल अंतर का एक बड़ा कारण सामान्य रूप से शहरों के मुकाबले ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर कम ध्यान देना है। गरीबी और अशिक्षा का सीधा संबंध है। देश की एक तिहाई आबादी गरीबी की रेखा से नीचे रहती है लेकिन गांवों में आधी से अधिक आबादी विपन्न अवस्था में रहती है। भारत के चार बड़े राज्यों—उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और बिहार में देश की 40 प्रतिशत आबादी बसती है और इन्हीं राज्यों में गरीबी, अशिक्षा, स्कूल न जाने वाले बच्चों, खास कर अनपढ़ बालिकाओं के आंकड़े, सबसे अधिक हैं। पुत्र की कामना और समाज में पुत्र के सम्मान के कारण भी पुत्रियां, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों की बालिकाएं, शिक्षा के अवसरों से वंचित रही हैं।

साथ में दी गई तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण इलाके शिक्षा और साक्षरता के क्षेत्र में कितने पिछड़े हैं। इस अंतर का एक बड़ा कारण यह है कि शहरों के मुकाबले गांवों में लोगों को अपने जीवन-यापन के लिए अधिक परिश्रम करना पड़ता है और वे शिक्षा के लिए अधिक समय नहीं निकाल पाते। वैसे तो देश के सभी भागों में बड़ी संख्या में बच्चे पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते हैं लेकिन गांवों में

तालिका

साक्षरता की दर 1951-1991

वर्ष	पुरुष	महिला	कुल व्यक्ति
1951			
ग्रामीण	19.02	4.87	12.10
शहरी	45.06	22.33	34.59
औसत	24.95	7.93	16.67
1961			
ग्रामीण	29.10	8.55	19.10
शहरी	57.49	34.51	46.97
औसत	34.44	12.95	24.02
1971			
ग्रामीण	33.76	13.17	23.74
शहरी	61.27	42.14	52.44
औसत	39.45	18.69	29.45
1981			
ग्रामीण	49.69	21.77	36.09
शहरी	76.83	56.37	67.34
औसत	50.50	29.85	43.67
1991			
ग्रामीण	57.87	30.62	44.69
शहरी	81.09	64.05	73.08
औसत	64.13	39.29	52.21

स्रोत : चुने हुए शैक्षिक आंकड़े 1996-97, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय

उनकी तादाद बहुत अधिक है जो अपनी पढ़ाई जारी नहीं रख पाते। बालकों को अगर खेत में काम करना होता है तो बालिकाओं को मां के साथ गोबर थापने, लकड़ियां बीनने और सफाई आदि में हाथ बंटाना होता है। एक अध्ययन के अनुसार, भारत में जितने बच्चे पहली कक्षा में दाखिला लेते हैं, उनमें से आधे ही पांचवीं कक्षा तक पहुंचते हैं। आठवीं कक्षा तक पहुंचते-पहुंचते 60 प्रतिशत बालक और 70 प्रतिशत बालिकाएं पढ़ना छोड़ देती हैं। यह एक गंभीर समस्या है और इसका सीधा संबंध गरीबी से है।

ग्रामीण क्षेत्र की समस्याएं

आजादी के पचास वर्ष बाद भी हमारे देश में साक्षरता की दर बहुत कम है। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में तो स्थिति बहुत दयनीय है। शहरों में कम्प्यूटरी शिक्षा का विस्फोट हो रहा है लेकिन गांवों में गरीबों को स्कूलों में टाट पट्टी और ब्लैक बोर्ड तक उपलब्ध नहीं होते। गांवों में लड़के-लड़कियों के लिए अलग स्कूल नहीं होते। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार गांवों में सहशिक्षा का उतना विरोध नहीं है, जितना स्कूलों में महिला शिक्षिका के न होने पर आपत्ति होती है। गांव के स्कूलों में अधिकतर एक ही शिक्षक होता है और वह सामान्यत: पुरुष ही होता है। महिला साक्षरता के कम प्रसार के कारण देश में महिला अध्यापिकाओं की वैसे भी कमी बनी हुई है। गांवों में प्राथमिक विद्यालयों में केवल 21 प्रतिशत और उससे आगे आठवीं कक्षा तक सिर्फ 23 प्रतिशत महिला शिक्षक हैं। शहरों में 56 प्रतिशत प्राईमरी स्कूलों में महिला शिक्षक पढ़ाती हैं। यही कारण है कि ग्रामीण इलाकों में पहली कक्षा में पढ़ने वाली बालिकाओं में से दो प्रतिशत भी दसवीं कक्षा तक नहीं पहुंच पाती हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चों, विशेषकर बालिकाओं को स्कूल भेजने और उनकी पढ़ाई जारी रखने की समस्या बहुत गंभीर है। स्कूलों में दाखिले के आंकड़े पंजाब (93.2 प्रतिशत), तमिलनाडु (87.6 प्रतिशत) और केरल (91 प्रतिशत) पहले ही अधिक थे। अब तमिलनाडु में यह 143.5 प्रतिशत, अरुणाचल प्रदेश में 131 प्रतिशत, कर्नाटक में 119.2 प्रतिशत और महाराष्ट्र में 118.8 प्रतिशत है। पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, हिमाचल प्रदेश में भी बड़ी संख्या में बच्चे स्कूलों में दाखिला लेते हैं लेकिन बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में अब भी एक-चौथाई से अधिक बच्चों ने स्कूल नहीं देखा होता।

लेकिन समस्या यह है कि दाखिला लेने वाले बच्चे भी अपनी पढ़ाई जारी नहीं रख पाते हैं। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में पहली कक्षा में प्रवेश पाने वाले बच्चों का अनुपात 1978 में 38.9 प्रतिशत से बढ़कर 1993 में 54.6 प्रतिशत हो गया। इनमें बालकों का स्कूल प्रवेश 1978-93 के दौरान 42 से बढ़कर 57 प्रतिशत हो गया जबकि स्कूल जाने वाली बालिकाओं का प्रतिशत इसी अवधि में 34 प्रतिशत से बढ़कर 52 प्रतिशत हो गया। यह वृद्धि विशेषकर केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक जैसे दक्षिण के राज्यों में और उत्तर भारत में पंजाब और हरियाणा में पाई गई। अरुणाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक आदि में बालिकाओं की स्कूल भर्ती में भी खासी बढ़ोतरी हुई है। लेकिन शहरी और ग्रामीण इलाकों में स्कूल जाने वाली संख्या में विशाल अंतर अब भी बना हुआ है जैसा कि नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट है।

तालिका
ग्रामीण व शहरी स्कूल प्रवेश में अंतर

राज्य	ग्रामीण			शहरी		
	बालक	बालिका	औसत	बालक	बालिका	औसत
आंध्र प्रदेश	86.0	61.7	74.0	80.5	72.7	76.7
अरुणाचल प्रदेश	71.4	51.8	61.8	92.2	74.0	83.1
असम	89.1	73.5	81.6	76.5	70.9	73.8
बिहार	96.3	49.5	73.0	79.7	60.6	70.2
दिल्ली	124.5	115.6	120.4	72.1	71.5	71.9
गुजरात	85.7	67.8	77.0	79.8	70.5	75.3
हरियाणा	89.5	69.8	80.4	59.4	58.7	59.1
हिमाचल प्रदेश	83.2	72.9	78.1	82.8	77.5	80.2
कर्नाटक	85.5	69.8	77.8	117.1	111.6	114.4
केरल	87.2	85.7	86.5	87.1	88.8	87.9
मध्य प्रदेश	98.3	60.9	80.1	100.5	85.2	93.1
महाराष्ट्र	91.1	77.6	84.5	85.5	81.8	83.7
मणिपुर	84.6	76.0	80.3	84.1	73.5	78.9
मेघालय	54.5	52.5	53.5	67.5	65.1	66.3
मिजोरम	89.8	86.7	88.3	51.4	52.4	51.9
नगालैंड	57.8	59.6	58.5	47.6	43.1	45.4
उड़ीसा	83.9	60.3	72.3	92.2	77.1	84.7
पंजाब	96.3	92.4	94.5	58.7	61.4	60.0
राजस्थान	85.7	35.2	63.4	82.5	63.6	73.9
तमिलनाडु	97.4	93.3	95.5	99.7	95.8	97.8
उत्तर प्रदेश	75.3	40.2	58.8	73.8	70.1	72.1
पश्चिम बंगाल	84.9	67.1	76.2	67.2	58.7	63.1
अखिल भारतीय	87.4	61.3	74.8	83.0	75.8	79.5

स्रोत : 5वां अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण

भावी संभावनाएं

शिक्षा, साक्षरता और सबको स्कूली शिक्षा की सुविधाएं देने में धन की कमी एक बड़ी बाधा बन गई है। शिक्षा के लिए हमारी योजनाओं का आबंटन 1951 में सकल राष्ट्रीय उत्पाद के मात्र 1.2 प्रतिशत से बढ़कर 1993 में 3.2 प्रतिशत हो गया था। नौवीं पंचवर्षीय योजना में यह प्रयास किया जा रहा है कि शिक्षा के लिए सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 6 प्रतिशत खर्च किया जाए। अगले पांच वर्षों में शिक्षा पर होने वाला व्यय दुगुना करने का यह फैसला इस बात का संकेत देता है कि हमारे नीति-निर्धारक

अब तक इस क्षेत्र की उदासीनता से हट कर भावी विकास के लिए अधिक मजबूत और व्यापक आधार तैयार करना चाहते हैं। लेकिन इतनी मात्रा में धन के उपयोग के लिए सावधानीपूर्वक योजना बनाकर उस पर एकाग्रता से अमल करना होगा। बढ़े हुए धन में से 50 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किया जाएगा।

इसके लिए सबसे जरूरी कदम यह होगा कि शिक्षा के विकास के लिए, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के प्रति रुझान बढ़ाने के लिए उन लोगों को आकृष्ट करना होगा जो छोटे बालकों, विशेषकर लड़कियों को, स्कूलों में भेजने के स्थान पर उन्हें परिवार के भरण-पोषण के काम में लगाने के लिए विवश हो जाते हैं। इसके लिए गांव-गांव में स्कूल चलाने होंगे, उनमें पीने के पानी, दोपहर के भोजन, बच्चों के स्वास्थ्य की जांच और प्राथमिक चिकित्सा सुविधाएं भी प्रदान करनी होंगी।

शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए राज्यों में 75 प्रतिशत बच्चे अभी स्कूल नहीं जा पाते। इनमें दो तिहाई लड़कियां होती हैं। पारिवारिक और सामाजिक कारणों के अतिरिक्त इसका एक बड़ा कारण उनके घरों के निकट या उचित दूरी पर स्कूल नहीं होना है। शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद द्वारा प्रायोजित 1993 के छठे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार अब भी करीब 11 लाख गांवों में से लगभग दो लाख गांव या 17 प्रतिशत गांव ऐसे हैं जिनमें गांव के अंदर या एक किलोमीटर की दूरी तक कोई स्कूल नहीं है और 24 प्रतिशत गांव ऐसे हैं जहां 3 किलोमीटर की दूरी तक कोई माध्यमिक स्कूल नहीं है।

जहां स्कूल मौजूद है, उनमें शिक्षकों की कमी एक बड़ी समस्या है। देश भर में, 28 प्रतिशत स्कूल ऐसे हैं जिनमें केवल एक शिक्षक ही नियुक्त है। 32 प्रतिशत स्कूलों में दो शिक्षक हैं। केवल 15 प्रतिशत स्कूल ऐसे हैं जिनमें तीन अध्यापक पढ़ाते हैं। शिक्षकों की कमी का असर बच्चों की पढ़ाई पर दिखाई देता है। एक कक्षा में सामान्यत: 30 बच्चे होने चाहिए, परंतु अध्यापकों के अभाव में औसत छात्र-शिक्षक अनुपात 42 से भी अधिक है। स्कूल न जाने वाले करीब 7 करोड़ बच्चों को स्कूल भेजने से पहले शिक्षकों का प्रबंध भी करना होगा।

हमारी अब तक की शिक्षा प्रणाली किताबी ज्ञान तक सीमित रही है। अगर आने वाले 20-25 वर्षों में हम अपने देश को आगे बढ़ाना चाहते हैं तो शिक्षा को रोजगार, शिल्प और काम के साथ जोड़ना होगा। उसके लिए छात्रों को हाथ से काम करने और शारीरिक श्रम की आदत भी डलवानी होगी। अब तक जितने भी शिक्षा आयोग या समितियां गठित की गई हैं, उन सभी ने शिक्षा को व्यावसायिक बनाने पर बल दिया है। देश के ग्रामीण अंचल में तो शिक्षा को रोजगार या शिल्प और काम-धंधे से जोड़ने की आवश्यकता और भी महत्वपूर्ण है। गांव के कारीगर को जब यह अहसास होगा कि उसका बच्चा स्कूल जाकर उसके पुश्तैनी काम को बेहतर ढंग से करके अधिक उत्पादन और धनोपार्जन कर सकता है तो वह उसे स्कूल भेजने में संकोच क्यों करेगा?

इसी से जुड़ा एक और महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि अभी तक शिक्षा के नाम पर खर्च होने वाले धन का अधिकांश भाग 90-95 प्रतिशत केवल शिक्षकों के वेतन पर ही खर्च होता है। इसलिए अन्य कामों के लिए, जिनसे शिक्षा को जीवनोपयोगी बनाया जा सकता हो, धन बचता ही नहीं है। स्कूलों में पुस्तकालय, प्रयोगशालाएं, कार्यशालाएं, खेल-कूद का सामान, धन के अभाव में पिछड़ जाते हैं। छठे शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार 1993 में 16 प्रतिशत प्राइमरी स्कूलों का अपना कोई भवन नहीं था या वह कच्चे भवनों में चल रहे थे अथवा खुले आकाश के नीचे कक्षाएं लगती थीं।

अगली शताब्दी में विकास का सबसे बड़ा संसाधन शिक्षा और उससे प्राप्त होने वाली सूचनाएं होगा। जो देश शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ जाएंगे, वह आर्थिक विकास भी नहीं कर पाएंगे। भारत और विशेषकर हमारा ग्रामीण अंचल इस दृष्टि से अभी भी पिछड़े हैं। एशिया में ही चीन, कोरिया, मलेशिया और इंडोनेशिया जैसे देश हमसे बहुत आगे निकल चुके हैं। विश्व बैंक के एक अनुमान के अनुसार आज की रफ्तार से भारत सबको प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में कोरिया से अगले 30 वर्षों में और मलेशिया तथा इंडोनेशिया से 20 वर्षों में बराबरी कर पाएगा। लेकिन तब तक यह देश कितने आगे निकल चुके होंगे। इसलिए हमें अभी से जागना होगा और देश की आधी जनसंख्या के निरक्षर होने के कलंक को मिटाना होगा। ❑

गांवों में सार्थक बदलाव : समता, संरक्षण और सहयोग

भारत डोगरा

यदि भारतीय गांवों सार्थक बदलाव की दिशा को हमें बहुत संक्षेप में व्यक्त करना हो तो हम इसे मात्र तीन शब्दों में बांध सकते हैं—समता, संरक्षण और सहयोग। समता से यहां अभिप्राय यह है कि सामाजिक-आर्थिक भेदभाव को समाप्त कर, सब गांववासियों को संतोषजनक आजीविका प्राप्त करने के अवसर मिलें। पर्यावरण संरक्षण से हमारा अभिप्राय यह है कि मिट्टी के उपजाऊपन, चरागाहों, वनों और जल-स्रोतों जैसे मूल प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा की जाए ताकि वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों की आजीविका का आधार बना रहे। सहयोग से यहां हमारा अभिप्राय यह है कि पूरे गांव समुदाय में परस्पर मिलकर सामूहिक कार्य की, एक दूसरे की सहायता करने की भावना मजबूत हो तथा ग्रामीण समुदाय की पहचान प्रतिष्ठित हो। आइए अब हम कुछ विस्तार से सार्थक बदलाव के इन तीन महत्वपूर्ण पक्षों पर विचार करें।

विषमता

भारत के पांच लाख से अधिक गांवों में बहुत विविधता और विषमता मिलती है। विषमता की दृष्टि से भी अलग-अलग क्षेत्रों में काफी भिन्न स्थिति देखी जाती है। यह भी सच है कि दक्षिण अमरीका के कुछ देशों जैसी बहुत विकट विषमता यहां कम नजर आती है। इसके बावजूद कुल मिलाकर हमारे गांवों में विषमता काफ़ी अधिक है। इसका कुछ अनुमान भूमि वितरण के आंकड़ों से लग सकता है पर इससे भी पूरी स्थिति का पता नहीं लगता है। विषमता के कई पक्ष हैं जो प्राय: एक दूसरे को बढ़ावा देते हैं। जिनके पास अधिक भूमि है, प्राय: उन्हीं के पास बेहतर शिक्षा, नौकरी, अधिकारियों और नेताओं से संबंध, तरह-तरह की ठेकेदारी प्राप्त करने की क्षमता भी है। दूसरी ओर जो भूमिहीन हैं या जिनके पास बहुत कम भूमि है, वे आय बढ़ाने के अन्य सब साधनों से भी प्राय: वंचित हैं। हालांकि कागजी तौर पर बहुत-सी सरकारी परियोजनाएं उन्हें प्राथमिकता देती हैं, पर अनेक कारणों से इन परियोजनाओं का वांछित लाभ भी प्राय: इन साधन-विहीन लोगों तक नहीं पहुंच पाता है।

विषमता का एक दूसरा स्रोत गांव के बाहर मौजूद है। गांव की बहुत-सी भूमि का स्वामित्व उन लोगों के हाथ में है जो इस भूमि पर मेहनत तो क्या करेंगे वे गांव में अधिकतर समय रहते भी नहीं हैं। उन लोगों के पास शहरों में अच्छी-खासी नौकरी है या तरह-तरह के व्यवसाय हैं। इसके बावजूद वे चाहते हैं कि गांव में भूमि का स्वामित्व बना रहे। सवाल यह है कि आजीविका प्राप्त करने के लिए इस भूमि पर पहला हक उन मेहनतकशों का है जो गांव की जमीन पर निरंतर अपना पसीना बहाते हैं या उन लोगों का जिनका गांव से संबंध बिना कोई मेहनत किये यहां से पैसा और अनाज बटोरने का है? यदि हम देश में हर व्यक्ति के लिए आजीविका चाहते हैं तो हमें इस बारे में कोई निर्णय लेना चाहिए कि जिनके पास अन्य स्रोतों से पर्याप्त आय आ रही है और इसके बावजूद वे बैठे-बैठे गांव की जमीन से अतिरिक्त आय प्राप्त करना चाहते हैं, उनकी अपेक्षा गांव के मेहनतकश लोगों के हक को प्राथमिकता दी जाए तथा यह भूमि उनमें वितरित की जाए।

गांव से बाहर विषमता का एक अन्य स्रोत है—वह व्यापारी वर्ग जो छोटे किसानों की कमजोर स्थिति का लाभ उठाकर उनसे अनाज और अन्य फसल सस्ते दामों पर खरीदते हैं चाहे बाद में किसान को यही अनाज अपना पेट भरने के लिए कहीं महंगे दाम पर खरीदना पड़े। किसानों को तरह-तरह के बंधनों में जकड़ कर उनसे न केवल औने-पौने दाम में फसल खरीदी जाती है, अपितु खाद, बीज आदि की बिक्री में भी उन्हें तरह-तरह से ठगा जाता है। रासायनिक कीटनाशकों के मामले में तो कई बार किसान बुरी तरह धोखा खा जाते हैं। अब नये पेटेंट कानूनों के आने के साथ बीज और रासायनिक कीटनाशकों आदि की खरीद में किसानों के शोषण की संभावना और बढ़ेगी।

अत: गांव में समता लाने के दो महत्वपूर्ण आयाम हैं। पहली बात तो यह है कि जो गांव से बाहर की शक्तियां गांववासियों को लूट रही हैं, उन पर नियंत्रण लगाया जाए। किसानों का ही नहीं, ग्रामीण मजदूरों का भी

बहुत शोषण बाहरी शक्तियों द्वारा होता है—जैसे उन बड़े ठेकेदारों द्वारा जो मजदूरों को कार्य करने के लिए दूर-दूर ले जाते हैं। अत: किसानों और ग्रामीण मजदूरों दोनों का जो शोषण बाहरी शक्तियों द्वारा हो रहा है, उसे रोकने के लिए असरदार उपाय जरूरी हैं।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि गांवों की जो आंतरिक विषमताएं हैं, उन्हें दूर किया जाए और आर्थिक विषमता के साथ-साथ सामाजिक भेदभाव को भी मिटाया जाए। समता का अर्थ यह नहीं है कि हर परिवार को एक जितनी जमीन मिल जाए या सब लोग सामूहिक खेती करने लगें। इतना बड़ा बदलाव तो शायद हो ही नहीं पाएगा और शायद उसकी जरूरत भी नहीं है। हम तो बस यह चाहते हैं कि गांव में ही या गांव के आस-पास गांव के हर परिवार को संतोषजनक आजीविका प्राप्त हो जाए। संतोषजनक आजीविका से हमारा अर्थ यह है कि हर मजदूर या किसान या दस्तकार के परिवार की बुनियादी जरूरतें पूरी हों, थोड़ी-सी बचत हो जाए तथा इतना कमाने के लिए उसे ऐसा परिश्रम या कार्य न करना पड़े जिससे उसके स्वास्थ्य का ह्रास हो। इस तरह की संतोषजनक आजीविका को हर परिवार तक पहुंचाना ही हमारा मूल उद्देश्य होना चाहिए।

संतोषजनक आजीविका

यदि किसी के पास बहुत भू-संपदा है या गांव के तालाबों पर उसका नियंत्रण है तो हम निरर्थक ही उससे कोई छेड़छाड़ नहीं करना चाहते, पर यदि अपने मूल उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, सब लोगों को संतोषजनक आजीविका देने के लिए, उसकी भूमि का कुछ हिस्सा लेना पड़ता है या अधिकांश हिस्सा भी लेना पड़ता है तो इसे उचित माना जाएगा क्योंकि यह सबके लिए रोजी-रोटी प्राप्त करने के नैतिक उद्देश्य के लिए किया जा रहा है।

हमारे गांवों में तरह-तरह की परंपरागत कुशलताओं और हुनर वाले लोग हैं। उनकी इस कुशलता और हुनर का लाभ उठाते हुए रोजी-रोटी का ऐसा मुकम्मल साधन उन्हें उपलब्ध करवाना चाहिए जिसमें उनकी अधिक तरक्की हो सके। जो लोग बांस की दस्तकारी करते हैं, उन्हें ऐसी कुछ भूमि मिले जहां वे बांस लगा सकें। जो वनों से शहद, आंवला आदि लघु वन-उपज एकत्र करते हैं, उन्हें इसके निश्चित अधिकार दिए जाएं। जो मछुआरे हैं, उन्हें तालाबों में मछली पकड़ने के हक में प्राथमिकता मिले।

संक्षेप में कहें तो गांव और आस-पास के प्राकृतिक संसाधनों का ऐसा उपयोग होना चाहिए और गांववासियों की भागीदारी तथा सहयोग से ऐसे उपयोग की विस्तृत योजना बननी चाहिए कि इन संसाधनों के आधार पर सभी ग्रामीण परिवारों को संतोषजनक आजीविका मिल सके और कोई भी परिवार संसाधन-विहीन न रहे।

पर यह आजीविका तभी सुरक्षित रहेगी यदि प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा होगी। कड़वी सच्चाई यह है कि हमारे खेतों की मिट्टी के उपजाऊपन का तेजी से ह्रास हो रहा है, बहुत-से गांवों में जलस्तर तेजी से नीचे जा रहा है, अनेक जल-स्रोत लुप्त हो गए हैं या बुरी तरह प्रदूषित हो गए हैं, चरागाहों का ह्रास बहुत तेजी से हो रहा है, वन उजड़ रहे हैं, अनेक उपयोगी पेड़-पौधे लुप्तप्राय हो रहे हैं, बीजों की विविधता बनाए रखने वाली फसलों की अनेक किस्में अब नजर ही नहीं आती हैं, पशुओं की अमूल्य देसी नस्लें खतरे में हैं, किसानों के मित्र अनेक तरह के जीव-जंतु व कीट-पतंगें संकटग्रस्त हो चुके हैं। चाहे कृषि की आजीविका हो या पशुपालन की हो, वनों पर आधारित हो या चरागाहों पर, जब तक ये प्राकृतिक संसाधन संकटग्रस्त रहेंगे, तब तक कोई आजीविका संतोषजनक रूप से पनप नहीं सकेगी।

यह पर्यावरण संरक्षण का मुद्दा एक ऐसा मुद्दा है जिसका बाहरी तौर पर समर्थन तो सब करते हैं पर जो ठोस निर्णय लिए जाने हैं वे निरंतर टाले जाते हैं। कई बार तो जिस दिशा में हमें जाना चाहिए उसके विपरीत काम होता है।

वन और अन्य तरह की हरियाली को बचाने के लिए गांववासियों का सहयोग जरूरी है, पर कई जगह वन और वन्य जीव संरक्षण के नाम पर उन्हें विस्थापित करने की नीति अपनाई जा रही है जो अनुचित है। मिट्टी के उपजाऊपन को बचाने के लिए कृषि में रसायनों के उपयोग को नियंत्रित करना जरूरी है, पर कई जगह तो बेहद खतरनाक रासायनिक कीटनाशकों या खरपतवार नाशकों के उपयोग को अंधाधुंध बढ़ाया जा रहा है। ऐसी कृषि नीतियां अपनाई जा रही हैं जिससे फसलों की परंपरागत विविधता कम होगी। ऐसी पशुपालन नीतियां अपनाई जा रही हैं जिनसे पशुओं की देसी नस्लों का ह्रास होगा।

सब तरह के निहित स्वार्थों के असर से मुक्त होकर आज हमें गांवों के संदर्भ में वे नीतियां अपनानी चाहिए जो वहां के पर्यावरण का संरक्षण करें और इस आधार पर आजीविका का पुख्ता, स्थायी आधार तैयार हो। समता का लक्ष्य और संरक्षण का लक्ष्य इस तरह नजदीकी तौर पर जुड़े हुए हैं। समता से हमारा अर्थ है सबको संतोषजनक आजीविका की उपलब्धि पर वर्तमान में और भविष्य में इस उपलब्धि के लिए जरूरी शर्त है—पर्यावरण का संरक्षण।

जहां एक ओर समता तथा संरक्षण के लक्ष्य नजदीकी तौर पर जुड़े हुए हैं, वहां दूसरी ओर ये दोनों लक्ष्य सहयोग के लक्ष्य से जुड़े हुए हैं। यदि समता के लक्ष्य के साथ हम सहयोग की भावना को विकसित नहीं करेंगे तो आपसी झगड़ों में ही हमारी बहुत-सी ऊर्जा नष्ट हो जाएगी। दूसरी ओर यदि पूरे गांव में यह भावना विकसित की जाए कि सारा गांव एक परिवार की तरह है और परिवार के हर सदस्य की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने की पूरे गांव की सामूहिक जिम्मेदारी है तो इससे सारे गांव में गरीब परिवारों की सहायता के लिए अनुकूल माहौल तैयार किया जा सकता है। जो दस्तकार और कुटीर स्तर पर विभिन्न तरह की दैनिक उपयोग की वस्तुएं बनाने वाले लोग गांवों में हैं, उनकी सफलता की संभावना कहीं बढ़ जाएगी यदि सभी गांववासी उनकी बनाई वस्तुओं को अपने गांव में रोजगार का आधार मानते हुए प्राथमिकता दें। महात्मा गांधी ने खादी के आधार पर गांवों में रोजगार सृजन की जो कल्पना की थी, उसमें समुदाय के बहुत-से सदस्यों के परस्पर नजदीकी सहयोग को बहुत महत्वपूर्ण माना गया था।

(शेष पृष्ठ 12 पर)

''गांधी जी के बारे में बात करते हुए वायसराय ने कहा था, 'इस बारे में किसी को भ्रम में नहीं रहना चाहिए, यह बूढ़ा भारत में सबसे बड़ी चीज है....इसका बड़ा भारी प्रभाव है'।''

''मैंने मुंबई में एक लाख लोगों की भीड़ में भाषण देते हुए नेहरू को सुना, 'मैं जापानियों से लड़ सकता हूं, परंतु स्वतंत्र हुए बिना मैं ऐसा नहीं कर सकता'।''

—लुई फिशर (गांधी की कहानी में)

द्वितीय महायुद्ध जब अपनी चरम सीमा पर था, सुप्रसिद्ध अमरीकी पत्रकार लुई फिशर उन्हीं दिनों भारत आए थे और एक सप्ताह तक सेवाग्राम में गांधी जी के साथ रहे थे। उन्होंने बड़ी बेबाकी से तत्कालीन घटनाओं का विश्लेषण किया था, जिसे भारतीय नेताओं और विदेशी राजनीतिज्ञों ने गंभीरता से प्रमाणित साक्ष्य के रूप में लिया। यह जून 1942 की बात है।

उन्होंने गांधी जी के बारे में अपना मत व्यक्त किया, ''बूढ़े लोगों को प्राय: पुरानी बातें याद आया करती हैं। अक्सर राजनीतिज्ञ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बात करते-करते अतीत में चले जाया करते हैं, पर 73 वर्ष की आयु में भी गांधी जी पुरानी बातें याद नहीं करते थे, उनका दिमाग आने वाली चीजों पर था। वर्ष उनके लिए महत्व नहीं रखते थे क्योंकि वे अनंत भविष्य की बातें सोचते थे। उनके लिए केवल उन घंटों का महत्व था जिनमें वे भविष्य को कुछ दे सकते थे। यह उनका नाप था।''

अपनी पुस्तक *गांधी की कहानी* में लुई फिशर ने चर्चिल के बारे में लिखा, ''चर्चिल गांधी की बात कैसे मानता? उसके मन में न तो भारत के लिए कोई दर्द था, न गांधी के प्रति कोई श्रद्धा-विश्वास। उसने द्वितीय महायुद्ध ब्रिटेन की विरासत को कायम रखने के लिए लड़ा था। क्या वह एक अर्ध-नग्न फकीर को अपनी यह विरासत छीन लेने देता? अगर चर्चिल का बस चलता तो वह गांधी को वार्ता या मंत्रणा के लिए वायसराय भवन की सीढ़ियां भी न चढ़ने देता।''

प्राचीन समय के चीनी यात्री और आधुनिक काल के लुई फिशर की तरह, समय-समय पर विदेशी पर्यटकों ने भारत की सभ्यता, संस्कृति, इतिहास तथा सद्भाव पर प्रकाश डाला है। पर भारतीय स्वतंत्रता के लिए जिन विदेशियों ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से योगदान दिया और जिन विद्वानों तथा विदुषियों ने भारत से जुड़ कर, इसकी सभ्यता-संस्कृति का गहन अध्ययन कर, भारतीयों को उनकी जड़ों से जोड़ने, अपनी समृद्ध विरासत के प्रति उनकी उदासीनता को दूर करके अपनी संस्कृति के प्रति उनके आत्म-गौरव को पुन: जागृत किया, उनकी देन को अलग से रेखांकित करने का प्रयास अभी तक बहुत कम हुआ है। अच्छा हो, आजादी के स्वर्ण जयंती वर्ष में हम उन्हें भी याद कर लें ताकि आगे उन पर विस्तृत कार्य के लिए राह खुल सके।

इनमें 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना करने वाले श्री एलन आक्टेवियन ह्यूम से लेकर विलियम वेडरबर्न, जार्ज यूल, अल्फ्रेड वेब जैसे पुरुषों की भी एक लंबी सूची है। पर यहां अपने अध्ययन पर आधारित मैं उन विदेशी विदुषियों को ही ले रही हूं, जिन्होंने भारत को अपना घर बनाया, भारतीय संस्कृति, धर्म तथा दर्शन के प्रति आकर्षित हो, उसका गहन अध्ययन किया और गुलामी से मुक्ति के लिए भारतीयों को हर संभव सहयोग दिया। यूं मेरी पुस्तक *भारत सेवी विदेशी नारियां* में सामाजिक क्षेत्र में सेवारत रहीं मिस मेरी रीड, मार्जरी साइक्स, सोफिया वाडिया, वेल्दी एच. फिशर से लेकर मदर टेरेसा तक अनेक नाम हैं,

भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में विदेशी विदुषियों की भागीदारी

आशारानी व्होरा

जिनके चयन पर स्व. काका कालेलकर ने बहुत प्रसन्नता व्यक्त की थी कि मैंने मिशनरी कार्य से मुख्यत: ईसाइयत के प्रचार को जोड़ने वाली विदेशी महिलाओं को छोड़, भारतीयों की वास्तविक सेवा करने वाले नामों का ही सही चयन किया है। पर यहां इन्हें भी छोड़, केवल स्वतंत्रता-संग्राम से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ी विदुषियों को ही लें :

इनमें जो नाम सबसे पहले उभर कर सामने आता है, वह है—**डा. एनी बेसेंट**। यों भारत में थिओसोफीकल सोसाइटी की जन्मदाता **मदाम ब्लावत्स्की** उनसे पहले 1875 में भारत आई थीं। पर उनका मुख्य कार्य अध्यात्म, ब्रह्मज्ञान और मानवीय बंधुत्व की भावना को ही समर्पित था, जबकि एनी बेसेंट थिओसोफीकल सोसाइटी की सक्रिय सदस्य होकर भी मुख्यत: सामाजिक-राजनैतिक क्षेत्र से जुड़ी हुई थीं और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उन्होंने लेखन व पत्रकारिता को भी साधन बनाया था। पर डा. एनी बेसेंट के कार्यों की चर्चा करने से पहले मदाम ब्लावत्स्की के बारे में भी कुछ जान लें।

शायद बहुत कम लोग जानते होंगे कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नींव मदाम ब्लावत्स्की की थिओसोफीकल सोसाइटी की बैठकों में ही पड़ी

थी। कांग्रेस के संस्थापक सर ह्यूम मदाम के शिष्य थे। मदाम ब्लावत्स्की ने भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में सीधे भाग नहीं लिया। न ही वह सन् 1900 तक कांग्रेस याचिकाओं की नीति से बाहर आकर स्वतंत्रता के लिए कोई संघर्ष छेड़ सकी थी। पर मानव मात्र की समता, विश्वबंधुत्व की भावना, भारत के 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के दर्शन के निकट होने और विश्व धर्म, दर्शन तथा अध्यात्म के तुलनात्मक अध्ययन शोध के थिओसोफीकल सोसाइटी के कार्यक्रम ने बहुतेरे भारतीय बुद्धिजीवियों और विद्वानों को आकर्षित किया था। सदस्य बनने वालों के अपने धर्म व विश्वास में थिओसोफीकल सोसाइटी का कोई हस्तक्षेप नहीं होगा, यह बात भी सबको पसंद आती थी। इसलिए भारत के पुनर्जागरण काल में इस सोसाइटी का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा। पर बाद में मदाम ब्लावत्स्की का झुकाव मुख्यत: गुप्त शक्तियों, अदृश्य सिद्ध पुरुषों, जिन्हें वे 'मास्टर्स' कहती थीं, आत्माओं और प्रकृति की चमत्कारिक सिद्धियों की ओर हो जाने से सोसाइटी के स्वदेशी आंदोलन, स्वराज आंदोलन, अछूतोद्धार, स्त्रियों व पिछड़ी जातियों के उद्धार तथा शैक्षणिक कार्यों की ओर उनका ध्यान कम हो गया। तब डा. एनी बेसेंट ने थिओसोफीकल सोसाइटी का काम संभाल लिया और उसे ज्ञान के प्रचार-प्रसार का प्रमुख केन्द्र बना दिया। अडयार स्थित सोसाइटी की लाइब्रेरी संसार की प्रमुख लाइब्रेरियों में से एक है जिसमें चीन, ईरान, श्रीलंका व अन्य पूर्वी देशों की एक लाख पुस्तकें तथा अट्ठारह हजार दुर्लभ पांडुलिपियां संग्रहीत हैं।

बीसवीं सदी के प्रारंभिक काल में राष्ट्रीय जागरण आंदोलन हो या स्वातंत्र्य-संघर्ष, महिला प्रगति का कार्य हो या समाज-सुधार का, डा. एनी बेसेंट का नाम हर जगह अग्रिम पंक्ति में दिखाई देगा। ऐसा नाम, जिस पर भारतीयता को गर्व है। भारतीय राष्ट्रीयता ग्रहण कर, भारतीय जीवन में घुल-मिल कर और भारतीय स्वाधीनता-संग्राम से जुड़ कर वह महिला कांग्रेस के अध्यक्ष पद तक पहुंची थीं और 1917 में इस पद को सुशोभित करने वाली पहली महिला थीं। उनसे प्रेरित हो, दिसंबर 1917 में भारतीय महिलाओं ने महिला-मताधिकार की मांग उठा दी थी। सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में प्रमुख महिलाओं का एक प्रतिनिधि मंडल लार्ड मांटेग्यू से मिला और इसके छह वर्ष बाद ही महिलाओं को उन्हीं शर्तों पर मताधिकार मिल गया था, जो उस समय पुरुषों के लिए लागू थी। कमला देवी चट्टोपाध्याय ने पहला चुनाव लड़ा, कुछ ही मतों से वह हार गईं, पर उस युग में प्रथम प्रयास के रूप में यह भारतीय स्त्रियों की जीत मानी गई और डा. मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी नामजद होकर 'पहली महिला विधायक' बन गईं।

इसके पूर्व 1907 में जब सूरत कांग्रेस 'गरम दल' व 'नरम दल' के रूप में विभक्त हो गई, तो एनी बेसेंट की सहानुभूति तिलक के गरम दल के साथ होने पर भी उन्होंने दोनों दलों में समझौता कराया था।

एनी बेसेंट ने अपना 'होम रूल आंदोलन' भी चलाया और 'होम रूल लीग' बना कर इसका भारत से बाहर भी प्रचार किया। इसके लिए 1913 में उन्होंने *कामन विल* नामक साप्ताहिक पत्र निकाला। फिर मद्रास का प्रसिद्ध दैनिक *मद्रास स्टैंडर्ड* खरीद कर उसका नाम *न्यू इंडिया* रख दिया। भारत को अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त कराने के लिए अपने पत्रों में वह उत्तेजक लेख व अग्रलेख लिखती रहीं। इसी कारण *न्यू इंडिया* की एक बार दस हजार, दूसरी बार बीस हजार की जमानतें जब्त की गईं और एनी को 15 जून 1917 को गिरफ्तार भी कर लिया गया। शासन-सुधारों की मांटेग्यू-घोषणा के बाद उन्हें रिहा किया गया।

उन्होंने *डेली हेराल्ड* जैसा पत्र निकालने का श्रेय भी प्राप्त किया, एक 'महिला प्रिंटिंग प्रेस' भी चलाया। भारतीयों की स्वतंत्रता के लिए 'नेशनल कन्वेंशन' नाम से एक अन्य आंदोलन भी चलाया, जिसके परिणामस्वरूप 1925 में 'कामन वेल्थ आफ इंडिया बिल' ब्रिटिश पार्लियामेंट में रखा गया था। उनके होम रूल आंदोलन पर मतभेद रहा, पर कई विद्वानों की राय में यदि कामन वैल्थ आफ इंडिया बिल का एनी बेसेंट वाला प्रारूप भारतीय नेताओं द्वारा स्वीकार कर लिया जाता तो भारत को आजादी कई वर्ष पहले मिल जाती, वह भी विभाजन की पीड़ा से रहित। पर गांधी जी के असहयोग आंदोलन से असहमति के बावजूद एनी बेसेंट समय-समय पर बहुमत का साथ देती थीं और उन्होंने 1928 में 'साइमन कमीशन' के बहिष्कार और 1929 में 'पूर्ण स्वराज' की मांग को अपना पूरा समर्थन दिया था।

भारतीय संस्कृति में पूर्ण आस्था रखने और भारतीयों को उनकी महान सांस्कृतिक विरासत पर गर्व करना सिखाने वाली डा. एनी बेसेंट ने बनारस में सेंट्रल हिंदू कालेज की स्थापना की थी, जिसे बाद में श्री मदनमोहन मालवीय ने हिंदू विश्वविद्यालय का नाम व स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने लगभग तीन सौ पुस्तकें, ढेरों टिप्पणियां और सैकड़ों लेख लिखे। अनेक दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्रों का संपादन-संचालन किया। विचार-स्वतंत्रता और मुद्रण-स्वतंत्रता के लिए डट कर संघर्ष किया। सन् 1893 में भारत आगमन के साथ ही उनकी 'सत्य की खोज' शुरू हुई और बाद का उनका पूरा जीवन 'सेवा के प्रति समर्पण' कहा गया। संसार में ऐसी बहुत कम महिलाएं मिलेंगी, जो एक साथ इतने क्षेत्रों में अग्रणी भूमिका निभाते हुए, अपने जीवन में इतनी ऊंची उठी हों!

आयरलैंड की **मार्गरेट नोबल** स्वामी विवेकानंद की शिष्या बन कर भारत आईं और उनसे 'लव इंडिया, सर्व इंडिया' का मंत्र लेकर भगिनी निवेदिता बन, भारत भूमि व भारतीय संस्कृति को समर्पित हो गईं। अपने देश में क्रांतिकारी पिता की बेटी होने के कारण चूंकि वह क्रांति-गतिविधियों में हिस्सा लेती रही थीं, इसलिए यहां भी उनकी सहानुभूति कांग्रेस के बजाय क्रांतिकारियों के साथ थी। श्री अरविंद के संपर्क में आने के बाद उन्होंने क्रांतिकारी साहित्य का अपना निजी पुस्तकालय भारत के क्रांतिकारियों को भेंट कर दिया था। पर खुल कर भाग लेने से उनके सेवा-कार्यों में बाधा आएगी, इसलिए परदे के पीछे रह कर ही क्रांतिकारियों की हरसंभव मदद करती रहती थीं। अपने गुरु स्वामी विवेकानंद की शिक्षाओं का पालन करते हुए उन्होंने एक ओर भारतीय संस्कृति, दर्शन, अध्यात्म, भाषा, शिक्षा और भारतीय जन के प्रति अपना समर्पण और निरंतर अध्ययन-चिंतन जारी रखा, तो दूसरी ओर स्त्री-शिक्षा व गरीबों, दलितों की सेवा में दिन-रात एक कर दिया। सच्चे अर्थों में निवेदिता बनीं भगिनी निवेदिता ने *द मास्टर, एज आई सा हिम, क्रेडल टेल्स आफ हिंदूइज्म, द वे आफ इंडियन लाइफ* जैसी पुस्तकों की रचना भी की।

स्वामी विवेकानंद के छोटे भाई क्रांतिकारी उपेन्द्रनाथ दत्त के पत्र *युगांतर* की प्रमुख प्रेरणा भगिनी निवेदिता ही थीं। श्री दत्त की गिरफ्तारी के समय अदालत में जाकर उनकी जमानत देने से भी पीछे नहीं हटीं। उनके बाग बाजार स्थित छोटे से घर में श्री अरविंद, विपिनचंद्र पाल, गोपालकृष्ण गोखले, रवींद्रनाथ ठाकुर, वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बसु जैसे विद्वान, साहित्यकार, पत्रकार, राष्ट्रीय नेता—सभी आते थे। इस तरह 'सेवा कुटीर' ही नहीं 'ज्ञान का मंदिर' भी था—उनका घर। उन्होंने श्री बसु की पुस्तकों का अनुवाद भी किया था। रवींद्रनाथ ठाकुर के अनुसार उनके उपन्यास *गोरा* की प्रेरणा भी वे ही थीं।

मार्गरेट कजिन्स भी आयरलैंड की थीं। भारत में महिला-मताधिकार आंदोलन की प्रेरणा और *इंडियंस वीमेन एसोसिएशन* और *आल इंडिया वीमेंस कांफ्रेंस* जैसे अखिल भारतीय महिला संगठनों की संस्थापिका थीं वे। पहले संगठन की *स्त्री* नामक पत्रिका और दूसरे संगठन की पत्रिका *रोशनी* की संपादिका के नाते उन्होंने मुख्यत: स्त्री शिक्षा, स्त्री अधिकार, स्त्री जागृति और प्रगति के लिए जम कर काम किया, जिसमें दिल्ली के लेडी इरविन कालेज की स्थापना भी मुख्य है। पर उनका विशेष कार्य-क्षेत्र रहा—राजनैतिक अधिकार। स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने वाली सभी नेत्रियां उस समय शिक्षा, समाज सुधार, स्त्री अधिकार, देश की स्वतंत्रता, इन सभी क्षेत्रों में काम कर रही थीं। पर मार्गरेट कजिन्स और कुछ दक्षिण भारतीय नेत्रियां स्त्रियों के राजनैतिक-सामाजिक अधिकारों के क्षेत्र में विशेष कार्य कर रही थीं। आज भी दिल्ली के भगवानदास रोड स्थित अखिल भारतीय महिला सम्मेलन के मुख्यालय सरोजनी हाउस में मार्गरेट कजिन्स लाइब्रेरी उनकी याद दिला रही है। भीतर से क्रांति-समर्थक श्रीमती कजिन्स एक अच्छी लेखिका, कलाकार व संगीतज्ञ भी थीं। उनकी लिखी पुस्तकें आज भी महिलाओं में प्रेरणा और आत्मबल का संचार करती हैं।

गांधी जी की शिष्या **मीरा बेन (मेडलीन स्लेड)** ने गांधी जी के रचनात्मक कार्यों को भी आगे बढ़ाया। उनके साथ अहिंसक सत्याग्रह व असहयोग आंदोलनों में भी भाग लिया, जेल भी गईं। इंग्लैंड की मेडलीन स्लेड एक नौसेना-कमांडर की बेटी होकर भी गांधी जी की शिष्या बन कर, उनके साथ आश्रम में रहीं और उन्होंने आश्रम के नियमानुसार पाखाना साफ करने तक का काम किया। इंग्लैंड में वे गोल मेज कांफ्रेंस में गांधी जी के साथ तो गईं ही, बापू के संदेश का प्रचार करने के लिए भी वहां अलग से गईं। यहीं नहीं, स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने के दौरान वह दो बार जेल-यात्रा भी कर आईं। 'भारत छोड़ो आंदोलन' के समय आगा खां जेल में महादेव देसाई और माता कस्तूरबा की मृत्यु के समय उनकी सेवा में वह उनके साथ ही थीं।

जिन मीरा बेन ने पूरे स्वतंत्रता संग्राम में गांधी जी का साथ नहीं छोड़ा, उनके साथ रहते सभी तरह के कष्ट उनके मिशन ने इस देश की आजादी के लिए झेले, वही मीरा बेन उनकी मृत्यु के बाद कुछ समय हरिद्वार के पास 'किसान आश्रम' नाम के एक ग्रामीण कल्याण केंद्र की स्थापना करके, 1944 से 1948 तक गांधी जी के निर्देशानुसार उसका संचालन करके भी, कुछ समय बाद अपने उस आश्रम और भारत को छोड़, अपने देश वापस कैसे लौट गईं? गांधी शताब्दी वर्ष में 2 अक्तूबर को जर्मनी के गांधी शताब्दी समारोह में वे उपस्थित थीं, ऐसा समाचार कहीं पढ़ने को मिला था, तो मन में प्रश्न उठा था कि उस वर्ष उन्हें भारत के समारोह में उपस्थित होना चाहिए था, न कि जर्मनी के किसी नगर में आयोजित समारोह में। यह शिकायत तब खत्म हुई, जब मीरा बेन की 90वीं वर्षगांठ पर 'गांधी स्मारक निधि' ने राजघाट पर एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया और 26 जनवरी 1982 को उन्हें भारत सरकार ने उच्च अलंकरण 'पद्म विभूषण' से अलंकृत कर जैसे इस भूल का परिमार्जन किया। उसी वर्ष 20 जुलाई 1982 को अपने गांव में उनका देहावसान हो गया। सुना गया कि अपने अंतिम दिनों में वह पूर्व के अध्यात्म को पश्चिमी जगत के सन्मुख रखने के लिए एक पुस्तक लिख रही थीं।

ये सारी सूचनाएं पर्यावरणविद् श्री सुंदरलाल बहुगुणा ने आस्ट्रिया में मीरा बेन से मिल कर आने के बाद भारत सरकार और भारतीय जनता को दी थीं। तभी आजाद देश की हमारी सरकार को उनकी याद आई थी। पता नहीं, उनके इस संसार से जाने से पूर्व उनकी वह पुस्तक पूरी हुई या नहीं?

अन्य विदेशी महिलाओं में विनोबा भावे की शिष्या सरला बेन (**कैथरीन हेलीमैन**) का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जो बापू और विनोबा, दोनों विभूतियों की संदेशवाहिका बन कर देश भर में घूमी थीं, ग्रामीण स्त्री-शक्ति जागरण के लिए जिन्होंने 'महिला लोक यात्रा' की थी और अल्मोड़ा के पास कौसानी में एक 'महिला आश्रम' चला रही थीं। 'भारत छोड़ो आंदोलन' 1942 में अल्मोड़ा क्षेत्र में वे आंदोलन की अगुवा थीं और घर-घर जाकर जेल गए कार्यकर्ताओं के परिवारों की देखभाल कर रही थीं। इसलिए ब्रिटिश सरकार ने उन्हें खतरनाक व्यक्ति घोषित कर उन्हें गिरफ्तार कर लिया था। पहले अल्मोड़ा, फिर लखनऊ जेल में रख, उन्हें कठोर कारावास का दंड दिया गया था। बापू व विनोबा के आदर्श ग्राम-स्वराज, नशाबंदी, हरिजन व दलित उद्धार और महिला शक्ति-जागरण ही उनके मुख्य रचनात्मक कार्य थे।

सन् 1975 में नई दिल्ली के 'हिमालय सेवा संघ' में मेरी उनसे भेंट हुई थी। तब मेरे यह पूछने पर कि चालीस साल भारत की सेवा में बिता कर भी आपने भारत की नागरिकता ग्रहण क्यों नहीं की? उनका उत्तर था, "इसलिए कि मैं स्वयं को विश्व-नागरिक मानती हूं और मानवतावादी होने के कारण ये सीमाएं नहीं स्वीकारती।" सरला बेन ने कई पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख नाम हैं : *अबला नहीं सबला* (नारी जागरण), *प्यारे बापू* (फ्रेंच पुस्तक का अनुवाद), *विनोबा का गीता प्रवचन* (अंग्रेजी अनुवाद), *स्वस्थ समाज-व्यवस्था* (सामाजिक विचार), *मैं कहां?* (आत्मकथा), *इकोलाजी* (पर्यावरण पर पहला विस्तृत ग्रंथ) आदि।

अल्मोड़ा क्षेत्र में ही चंदन कुष्ठ आश्रम की सेवा में 50 वर्ष बिताने वाली **मिस मेरी रीड** भी गांधी जी की अनन्य भक्त और शिष्या थीं, जो स्वयं मामूली कुष्ठ रोग से पीड़ित होकर आजन्म कुष्ठ रोगियों की सेवा में लग

गई थीं। मानवता की सेवा में पूरा जीवन बिताने वाली इस महिला ने भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में सीधे भाग नहीं लिया। गांधी जी की प्रेरणा से उनके दिखाए मार्ग पर चलते हुए, रचनात्मक सेवा-कार्य में ही लगी रहीं। भारत को इस मूक सेविका पर गर्व है।

भारत में पहले नर्सिंग स्कूल की संस्थापिका **डा. इडा सोफिया स्कडर** जिन्हें 1939 में 'केसरे हिंद' की उपाधि से सम्मानित किया गया था, गांधी जी से प्रेरित और उनके जाने के बाद लखनऊ के 'साक्षरता निकेतन' की संस्थापिका, 'नेहरू साक्षरता पुरस्कार' और अंतर्राष्ट्रीय 'मैगसासायसाय पुरस्कार' से सम्मानित लेखिका, समाजसेविका **डा. वेल्दी एच. फिशर,** श्री अरविंद की साथिन, *आर्य* पत्र की संपादक, भारत में फिर से अध्यात्म की ज्योति जलाने वाली पांडिचेरी की **श्री मां (श्रीमती रिचार्ड)**, विदुषी शिक्षा शास्त्री **डा. ओलिव रेड्डिक**, दक्षिण में नीलिगिरी की पहाड़ियों में एक कुटिया बना कर आस-पास के आदिवासियों की सेवा में रत गांधी जी की 'नई तालीम' पर अध्ययन करने वाली, शांति की उपासिका, भारत प्रेमी **मार्जरी साइक्स**, जो दीनबंधु एंड्रयूज की मृत्यु के बाद उनकी जीवनी लिखने के लिए सामग्री की खोज में आई थीं, ऐसे ही कुछ अन्य नाम हैं।

पर इन सबसे अलग एक नाम है—**म्यूरियल लीस्टर** का, जो भारतवासी न होकर भी गांधी जी की अनन्य उपासिका के नाते भारत के उनके कामों में हाथ बंटाती रहीं और इस सिलसिले में समय-समय पर भारत-यात्राएं करती रहीं। अक्तूबर 1925 में भारत आने पर जब वह साबरमती आश्रम गईं, तो वहां गांधी-जन्मदिन के अवसर पर सामूहिक कताई का कार्यक्रम चल रहा था। जमीन पर बैठने की उनकी कठिनाई भांप, बापू ने उनके लिए स्टूल मंगवाया। उनसे दीक्षा लेने आई महिला को उनसे ऊंचे बैठने में संकोच हुआ तो बापू स्वयं उठ कर बेंच पर बैठ गए। श्रीमती लीस्टर गांधी-निवास, उनकी दिनचर्या, उनके जन्मदिन का अनोखा कार्यक्रम देख कर दंग रह गई थीं। फिर जो प्रश्नों का दौर चला, तो समाधान में उनकी गांठें एक के बाद एक करके खुलती चली गईं। यह अंग्रेज महिला उनकी भक्त बन कर लौटीं। बिहार में भूकंप के समय राहत कार्यों में हाथ बंटाने वह फिर भारत आईं और बाद में समय-समय पर आती रहीं।

गांधी जी गोल मेज कांफ्रेंस में लंदन जाने पर उनके 'किंग्सले हाल' में ही ठहरे थे और म्यूरियल लीस्टर ने अपने इस अनोखे मेहमान पर *इंटरट्रेनिंग गांधी* नाम से संस्मरण-पुस्तक लिख दी थी। रोमा रोलां लिखित फ्रेंच पुस्तक *महात्मा गांधी* पढ़ कर वे गांधी जी के निकट आई थीं और भारत न बस कर भी अपने देश में गांधी जी की शिष्या के रूप में उनके मिशन को आगे बढ़ाती रही थीं। द्वितीय महायुद्ध के समय वह गांधी जी के सिद्धांतों को कार्यरूप देते हुए दक्षिण अफ्रीका में घूम रही थीं कि अधिकारियों ने उन्हें पकड़ कर ट्रिनिडाड में चार महीने के लिए नजरबंद कर दिया। इसके बाद उन्हें ब्रिटिश जेल में स्थानांतरित कर दिया गया था।

तीस जनवरी 1948 को गांधी जी की हत्या के समाचार से उन्हें गहरा आघात पहुंचा था। फिर वे *गांधी के हस्ताक्षर* नामक पुस्तक के प्रकाशन में जुट गई थीं, जिसमें उन्होंने गांधी जी द्वारा म्यूरियल लीस्टर को समय-समय पर लिखे गए पत्र संकलित किए। श्रीमती लीस्टर ने इन्हें 'आत्मा से आत्मा की बातचीत' की संज्ञा दी। 1968 में अपने अंत समय तक वे गांधी जी की अनुयायिनी और भारत प्रेमी बनी रहीं। विशेष रूप से गांधी जी के अपरिग्रह सिद्धांत से वे बहुत प्रभावित थीं कि इच्छाओं का तो कोई अंत ही नहीं। संसार की अधिकांश बुराइयों की जड़ परिग्रह में ही है। उसी गांधी जी के आज के भारत में उनके अपरिग्रह सिद्धांत का यह हश्र उन्होंने देखा होता तो?

इस छोटे से लेख में भारत के स्वतंत्रता-संग्राम और गांधी जी के रचनात्मक काम की भागीदारी इन सभी विदेशी विदुषियों की भारत को अनुपम देन पर संक्षिप्त प्रकाश डाल, इनके प्रति न्याय नहीं किया जा सकता। फिर भी 'स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती' के समापन के अवसर पर उनकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने के इस लघु प्रयास के साथ-साथ उन्हें नमन तो किया ही जा सकता है। ❑

(पृष्ठ 8 का शेष) **गांवों में सार्थक बदलाव : समता, संरक्षण और सहयोग**

इसी तरह पर्यावरण संरक्षण और सहयोग का बहुत नजदीकी और स्पष्ट रिश्ता है। वास्तव में गांवों में पर्यावरण संरक्षण के अधिकांश कार्य जैसे—वनीकरण, जल व मिट्टी संरक्षण, बीजों की विविधता की रक्षा, वृक्षों की रक्षा आदि तब तक सफल हो ही नहीं सकते हैं, जब तक गांव समुदाय में परस्पर सहयोग की मिल-जुलकर काम करने और जिम्मेदारी संभालने की भावना को विकसित न किया जाए।

अत: समता, संरक्षण और सहयोग तीनों एक-दूसरे से नजदीकी तौर पर जुड़े हुए हैं और भविष्य में ग्रामीण विकास का आधार इन्हें बनाया जाए तो निश्चय ही बहुत अच्छे परिणाम मिल सकते हैं। संकीर्ण सोच की परियोजनाओं और कार्यक्रमों में धन का अपव्यय करने के स्थान पर इस व्यापक सोच के आधार पर, समता, संरक्षण और सहयोग के आधार पर, गांवों में सार्थक सामाजिक-आर्थिक बदलाव बनाने के प्रयास होने चाहिए। दो-तीन वर्षों में ही इस सोच के आधार पर प्रतिबद्धता से कार्य करने के कितने प्रेरणादायक परिणाम मिल सकते हैं, यह जानने के लिए कुछ चुने हुए गांवों में महत्वपूर्ण प्रयोगात्मक कार्य तो शीघ्र आरंभ किया जा सकता है। ❑

ग्राम्य-जीवन : कल, आज और कल

डा. नवीन चन्द्र जोशी

स्वतंत्रता के पश्चात योजनाबद्ध तरीके से देश की आर्थिक प्रगति के लिए विभिन्न योजनाएं बनाई गईं। उस समय तक देश की समूची अर्थ-व्यवस्था में एक प्रकार की गहरी अनिश्चितता छाई हुई थी। पंडित जवाहरलाल नेहरू की सूझबूझ से योजना आयोग की स्थापना हुई। दिशा-निर्देश तय किए गए। कहां पर क्या परियोजनाएं लागू की जाएं, इस पर सहमति बनी और प्रथम पंचवर्षीय योजना बनाई गई।

इस बात का भी आकलन किया गया कि ग्रामीण क्षेत्रों में क्या आवश्यकताएं हैं और उनके विकास के लिए क्या किया जाए। दो बातें स्पष्टतया सामने आईं। एक तो यह कि चूंकि ग्रामीण जनता बहुतायत में कृषि पर ही निर्भर है, इसलिए कृषि कार्य में सर्वोमुखी तरक्की हो जिससे कि किसान वर्ग के आय में वृद्धि की जा सके और दूसरे यह कि सभी गांवों में जीवन-यापन के न्यूनतम आवश्यकताओं को उपलब्ध कराया जाए।

इन लक्ष्यों को ध्यान में रख कर योजना आयोग द्वारा देश के गांवों को विकास खंडों में रखा गया और प्रत्येक विकास खंड को विकेन्द्रीकरण के आधार पर अपनी विकास योजना बनाने की छूट दी गई। यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी क्योंकि आजादी के तुरंत बाद ग्रामीण नागरिकों को विकास प्रक्रिया में रचनात्मक भूमिका निभाने का अवसर दिया गया। विकास खंड सर्वांगीण विकास के लिए प्रशासनिक इकाई माने गए और वे देश के ग्रामीण विकास हेतु सामुदायिक विकास कार्यक्रम के केन्द्र बने। 1952 से पूरा देश, कुछ मूलभूत आधारों पर, 'प्रसार सेवा' खंडों के रूप में निर्धारित कर दिया गया। यह निर्धारण मुख्यत: जनसंख्या तथा भौगोलिक परिस्थितियों पर आधारित था।

ग्रामीण जनजीवन के सर्वांगीण विकास हेतु बहुउद्देश्यीय कार्यकर्ताओं का दल, ग्राम सभा से लोक सभा तक, समन्वित प्रशासनिक शक्तियों के नियंत्रण और निर्देशन में होना रखा गया था। परंतु यह भी सच है कि समय की धारा में यह एकात्मकता का स्वरूप टूटता चला गया और समय-समय पर कुछ परिवर्तन किए गए। दूसरी ओर चूंकि देश के विभिन्न क्षेत्रों के विकास की अवस्था में बहुत अंतर था, अत: इस बात का प्रयत्न किया गया कि किस प्रकार पिछड़े क्षेत्रों का स्तर ऊपर उठाया जाए। उन पर अधिक से अधिक ध्यान देने की आवश्यकता महसूस की गई। इस कारण बुनियादी ढांचा, कृषि, उद्योग और अन्य व्यवसायों को स्थापित करके विषमता दूर करने के लिए भरपूर प्रयत्न किए गए। काफी हद तक हम इस कार्य में सफल हुए हैं। पिछड़े इलाकों में सड़कें बनीं, बिजली, पानी और नयी औद्योगिक इकाइयां स्थापित हुईं। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी यदि कहा जाए कि बहुत से पिछड़े इलाके शहरों से अधिक खुशहाल बने, एक चमत्कारिक लहर-सी उनके आर्थिक और सामाजिक जीवन में आई।

दरअसल पिछड़े इलाके ब्रिटिश शासन की देन है। उनकी भूमि व्यवस्था ने गरीब ग्रामीणों को बिल्कुल बेहाल कर दिया था, वे सबसे अधिक दबे हुए लोग थे और केवल ऋण दलाल ही पनप रहे थे जो ब्रिटिश शासकों से मिले हुए थे। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में तय किया गया कि भूमि स्वामित्व कानून और प्रथा में सुधार किया जाए। अत: जमींदारी, जागीरदारी, रैयतवारी जैसी कुप्रथाओं को समाप्त कर जमीन जोतने वाले को स्तामित्व देने का कानून बना। यह समूची ग्रामीण व्यवस्था और ग्राम्य जीवन में एक क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का प्रयास था।

भूमि सुधार कानून बने

जमींदारी उन्मूलन के फलस्वरूप जमींदारों के अधिकार में केवल वह भूमि छोड़ी गई, जिस पर वे स्वयं खेती करते थे तथा ऐसे भू-खंडों के पेड़, कुंओं और तालाबों पर उनका अधिकार रहने दिया गया। बिचौलियों की समाप्ति के पश्चात जमीन की व्यवस्था सरकार के हाथों में आ गई। इसका किसानों के आर्थिक जीवन पर बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। इससे किसान जमींदारों के शोषण से मुक्त हो गए। इन मध्यस्थों की समाप्ति से अब किसानों एवं सरकार का सीधा संपर्क हो गया। इसके बाद सरकार ने बहुत-सी बंजर भूमि का भी प्रबंध अपने हाथ में ले लिया और भूमिहीन किसानों में वितरित किया।

किसानों को भूमि पर स्वामित्व प्राप्त हो जाने से कृषि-कार्य में प्रोत्साहन मिला, फलस्वरूप उत्पादन अधिक होने तथा किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार की संभावना बढ़ी। जमींदारी उन्मूलन के साथ-साथ विभिन्न राज्यों में जोतों की अधिकतम सीमा निर्धारित की गई जिससे ग्राम्य-जीवन में असमानता दूर हो सके। इसके अतिरिक्त जमींदार जो लगान का एक बहुत बड़ा भाग अपने पास रख लेते थे, अब वह सरकारी खजाने में जाने लगा और सरकार की आय में वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप सरकार के लिए विकास-कार्यों आदि पर अधिक ध्यान संभव हुआ। जमींदार लोग जो गैर-कानूनी वसूली करते थे, बेगार आदि लेते थे, वह भी समाप्त हो गया।

इस प्रकार स्वतंत्रता की प्रमुख उपलब्धि ग्रामीण क्षेत्र में एक शोषक तथा निष्क्रिय वर्ग के अंत होने के रूप में समस्त देशवासियों को प्राप्त हुई।

यह सही है कि तत्पश्चात आर्थिक विषमता में काफी सीमा तक कमी आई तथा कृषि विकास को प्रोत्साहन मिला। परंतु साथ-साथ सरकार के समक्ष आर्थिक संकट आया, क्योंकि जमींदारी उन्मूलन अधिनियम के अनुसार जमींदारों को उनकी जमींदारी के बदले में कोई 700 करोड़ रुपये क्षतिपूर्ति तथा पुनर्वास सहायता के रूप में चुकाना पड़ा। इस प्रकार आर्थिक विषमता को दूर करने पर एक आघात पहुंचा और जो धन ग्राम विकास कार्यों में लगाया जा सकता था, वह नहीं लगाया जा सका।

भूमि सुधार कानूनों की समीक्षा जरूरी

भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारित की गई, यद्यपि कुछ राज्यों में इस कार्य में देर हुई या कमियां रह गईं, फिर भी आज भूमि सीमा कानून देश भर में लागू है। भू-स्वामित्व में सुधार करने की दिशा में जो प्रयास किए गए और जो कानून बनाए गए, प्राय: सभी राज्यों में उन पर पूर्ण रूप से अमल नहीं किया गया और टाल-मटोल की नीति अपनाई गई। उन राज्यों के भू-स्वामियों के निहित स्वार्थ और वहां का उनका राजनीतिक प्रभुत्व ही इसका कारण रहा है। स्वाभाविक रूप से अधिकांश राज्यों में पारित कानूनों पर प्रभावकारी अमल नहीं किया गया। वैसे भूमि सुधार के अधिनियमों के संदर्भ में भू-स्वामियों का समर्थन न प्राप्त होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, क्योंकि भू-स्वामित्व का नियमन करना या उसे सीमित बनाना भू-स्वामियों की परंपरागत धारणा के अनुकूल नहीं था। अत: इस प्रकार के अधिनियमों को लागू करने में इस वर्ग से सहयोग प्राप्त करने की आशा करना व्यर्थ था।

इस प्रकार के अधिनियमों को लागू करने में असफलता का एक महत्वपूर्ण कारण यह रहा कि इसका उत्तरदायित्व भू-राजस्व विभाग पर था। इसके लिए भू-राजस्व विभाग का प्रशासन जितना समर्थ होना चाहिए, उतना प्राय: किसी भी राज्य में नहीं था। इसलिए भूमि सुधार से जुड़े हुए सभी कार्यक्रमों का फिर से अवलोकन करने की आवश्यकता है जिससे कि प्रभावकारी तरीके से उन्हें लागू किया जा सके।

भूमि का उप-विभाजन रोकना होगा

कृषि कार्य को भी सुधारने की आवश्यकता है परंतु यह तभी संभव हो पाएगा जब अनेक कमियों को दूर किया जाए। उदाहरण के लिए, हमारे देश में कृषि-जोतों की समस्या बहुत गंभीर है। जोतें न केवल छोटी हैं, अपितु विखंडित भी हैं। उप-विभाजन और उपखंडन की प्रक्रिया इस सीमा तक बढ़ गई है कि भूखंड अत्यंत छोटे आकार के रह गए हैं। देश का भौगोलिक क्षेत्रफल तो सीमित है, परंतु जनसंख्या की वृद्धि की गति तीव्र है। इस बढ़ी हुई जनसंख्या का दो-तिहाई से अधिक भाग कृषि पर निर्भर है। इसका परिणाम यह है कि विभाजन के कारण जोतों का आकार छोटा तथा अनार्थिक हो जाता है। वर्तमान कृषि तकनीक के अंतर्गत प्रयोग होने वाले विभिन्न आधुनिक कृषि यंत्रों का उपखंडित एवं उपविभाजित जोतों में नहीं किया जा सकता। इसलिए चकबंदी, आर्थिक जोत के निर्माण, जोतों की उच्चतम सीमाबंदी तथा सहकारी कृषि की एकीकृत योजना तैयार करना आवश्यक है तभी इस समस्या का समाधान संभव होगा। अभी तक चकबंदी कार्यक्रम को उतनी सफलता नहीं मिली जितनी मिलनी चाहिए थी। चकबंदी का कार्यक्रम जितना ही आवश्यक है, वह व्यवहार में उतना ही कठिन है, क्योंकि भारत में जोतों की चकबंदी के मार्ग में बहुत-सी बाधाएं उपस्थित हैं, जैसे कुछ राज्यों में चकबंदी कानूनों का न होना, कुछ राज्यों ऐच्छिक चकबंदी होना, भारतीय कृषकों का पैतृक भूमि के प्रति अधिक लगाव होना, चकबंदी अधिकारियों का कुशल न होना तथा भ्रष्ट होना आदि चकबंदी के मार्ग में बाधक तत्व हैं।

यदि कृषि कार्य को बढ़ाना है और ग्रामीणों की स्थिति सुधारनी है तो अनार्थिक जोतों का पीढ़ी-दर-पीढ़ी बंटवारा रोकना होगा। इसलिए यह आवश्यक है कि स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर ऐसा कानून बनाया जाए जिसके अंतर्गत एक निश्चित सीमा के बाद भूमि के उप-विभाजन को अवैधानिक घोषित किया जा सके जिससे कि इस समस्या से छुटकारा पाया जा सके।

सहकारिता आंदोलन का प्रभाव

एक अन्य मुद्दा यह है कि सहकारिता का आर्थिक विकास से गहरा संबंध है। किसी भी अर्थ-व्यवस्था में सहकारिता के जन्म के पीछे भीषण अकाल, अत्यधिक गरीबी, पूंजीपतियों द्वार अत्याचार, मंदी अथवा तेजी, ग्रामीण समाज का शोषण और उत्पीड़न तथा अत्यंत निम्न उत्पादकता जैसे तत्व रहे हैं जो आर्थिक विकास की गति को हतोत्साहित करते हैं। प्रारंभ में सहकारिता का एक ही रूप विकसित हुआ और वह था—कृषि सहकारिता। लेकिन बाद में सहकारिता के कई रूप सामने आए। भारत में आज सहकारी समितियों का स्वरूप मुख्यत: त्रि-स्तरीय है। मुख्य रूप से कृषि-वित्त की जटिल समस्या को दूर करने के लिए ही भारत में सहकारिता आंदोलन चलाया गया। ऋण-व्यवस्था के क्षेत्र में प्राथमिक समितियों के ऊपर जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक और राज्य स्तर पर राज्य सहकारी बैंक हैं। सहकारिता के आधार पर दीर्घकालीन ऋण की व्यवस्था का कार्य अलग से भूमि बंधक अथवा भूमि विकास बैंक करते हैं। इसी प्रकार कई प्राथमिक समितियां विभिन्न क्षेत्रों में काम कर रही हैं।

सहकारी संस्थाओं ने ग्रामीण जीवन को एक नई स्फूर्ति दी और ग्रामीणों में परस्पर मिल कर काम करने की भावना पैदा की। सहकारिता से आर्थिक लाभ के अतिरिक्त सामाजिक और नैतिक लाभ भी हुए हैं। जिन ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारिता सफल हुई है, वहां लोगों में सहयोग और सद्भावना बढ़ी है, मुकदमेबाजी और फिजूलखर्ची कम हुई है तथा लोगों में आत्मनिर्भरता, ईमानदारी, शिक्षा, मितव्ययिता, स्वावलंबन और पारस्परिक सहयोग की भावना का विकास हुआ है। यह भी सत्य है कि सहकारी आंदोलन के विकास में कुछ आधारभूत कमियां और कठिनाइयां हैं जिनके कारण देश के सभी भागों में उसकी प्रगति समान रूप से नहीं हो सकी। कुछ कमियां तो सहकारी आंदोलन के गठन में हैं और कुछ भारतीय ग्राम्य-समाज की सामाजिक और आर्थिक संरचना में हैं। भविष्य में आशा की जानी चाहिए कि सहकारिता के माध्यम से ग्रामीण जीवन में विभिन्न

समस्याओं का समाधान किया जा सकेगा। इसके लिए गांवों की पंचायतों को अभी से प्रयत्नशील होना चाहिए और एक सामुदायिक विचारधारा पैदा की जानी चाहिए।

बढ़ती आबादी : प्रमुख समस्या

सामुदायिक विकास कार्यक्रम कृषि-सुधार और सामाजिक-सुधार की प्रमुख अवधारणा है। इन कार्यक्रमों ने ग्रामीण जीवन को श्रेष्ठतर बनाने की दिशा में अपने कदम तेजी से बढ़ाए हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार, शिक्षा, विद्युतीकरण, पेयजल, मकान आदि की सुविधाएं उपलब्ध कराई गईं और इनका विस्तार समय-समय पर होता रहा है। फिर भी ग्रामीण जनसंख्या के प्रतिवर्ष बढ़ने के कारण सब सुविधाएं अपर्याप्त हो जाती हैं। यदि बढ़ती आबादी को रोका जाए, तभी कोई संतोषप्रद परिणाम प्रत्येक ग्रामीण इलाके में देखे जा सकते हैं। क्या भविष्य में यह हो पाएगा, कहना कठिन है।

नौवीं योजना का एक प्रमुख लक्ष्य है कि गांवों में एक समयबद्ध कार्यक्रम के अनुसार बुनियादी न्यूनतम सेवाएं, जैसे—पीने का स्वच्छ पानी, प्राथमिक स्वास्थ सुविधाएं, सबके लिए प्राथमिक शिक्षा, आवास, आदि मुहैया किया जाए। शिक्षा के प्रबंध और विकेन्द्रीकृत योजना के अंतर्गत देश में ग्रामीण शिक्षण समितियों का गठन किया गया है। यह समितियां ग्राम स्तर पर शिक्षा के संचालन के लिए उत्तरदायी हैं। ग्रामीण बेरोजगारी को दूर करने के लिए विशेष कार्यक्रम तैयार किए गए हैं। इनमें प्रमुख हैं—अनाज के बदले काम और राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम। इनके अतिरिक्त ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम, स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवकों को प्रशिक्षण योजना (ट्राइसेम), जवाहर रोजगार योजना और समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम प्रमुख हैं।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम

जैसा कि सर्वविदित है, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम मुख्य रूप से ग्रामीण निर्धनता निवारण के उद्देश्य से 1978-79 में प्रारंभ किया गया। इसका यह लक्ष्य रखा गया था कि सन् 2000 तक ग्रामीण क्षेत्र के सभी लोग जो गरीबी रेखा से नीचे रह रहे थे, उन्हें ऊपर उठाया जाएगा। प्रारंभ में यह कुछ चुने हुए खंडों में सीमित आधार पर लागू किया गया, परंतु बाद में अक्तूबर 1980 से देश के सभी विकास खंडों में लागू कर दिया गया। यह योजना एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में अपनाई गई, जिसका लक्ष्य ग्रामीण निर्धनों का विकास करना है। इसमें कृषि विकास के साथ-साथ गैर कृषि विकास कार्यक्रम भी सम्मिलित हैं। कुल मिलाकर, इसके अंतर्गत गांव के सर्वांगीण विकास पर जोर दिया जाता है, न कि किसी एक उत्पादक क्षेत्र के विकास पर। यह कहा जा सकता है कि गांवों में प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीय क्षेत्र की गतिविधियों को प्रोत्साहित किया जाता है, जैसे—पशुपालन, रेशम कीटपालन एवं कृषि पर आधारित अन्य क्रियाएं, बुनाई हस्तशिल्प तथा सेवा एवं व्यावसायिक कार्य आदि।

इस योजना में लघु और सीमांत कृषकों को कृषि कार्य के साथ-साथ अन्य सहायक व्यवसाय यदि वे करना चाहें तो उन्हें सहायता दी जाती है। महत्व की बात है कि यह भी निश्चय किया गया कि सहायता दिए जाने वाले परिवारों में कम-से-कम 50 प्रतिशत अनुसूचित जातियों व जनजातियों के परिवार होने चाहिए तथा कुल लाभार्थियों में कम-से-कम 40 प्रतिशत महिलाएं हों। यद्यपि इस योजना में कुछ कमियां रहीं, कुछ कारणों से यह योजना पूर्ण लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाई, फिर भी उपलब्धियां सराहनीय रहीं। भविष्य में इस योजना की खामियों को दूर करना होगा और महत्वपूर्ण परिवर्तन करके कार्यक्रम को अत्यधिक सफल बनाया जा सकता है।

ग्रामीण जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी प्रचुर मात्रा में परिवर्तन आये हैं जिसका आज के ग्रामीण भरपूर लाभ प्राप्त कर रहे हैं। महिलाओं के लिए अनेक योजनाएं बनीं और उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, आय, बचत आदि के बारे में तरह-तरह की योजनाओं से उन्हें लाभ मिल रहा है। गरीबी, बेकारी, कृषि उत्पादन में वृद्धि, बच्चों की सुरक्षा आदि विषयों पर सरकार ने समय-समय पर ठोस योजनाएं बनाई हैं और लागू की हैं। महत्वपूर्ण परिवर्तनों की दिशा में पंचायती राज प्रणाली को नई स्फूर्ति देना रहा है जिसमें महिलाओं की एक-तिहाई भागीदारी सुनिश्चित की गई। ग्रामीण महिलाओं को अधिक स्वावलंबी, सशक्त और प्रगतिशील बनाने का भरसक प्रयत्न किया गया है और बहुत हद तक इसमें सफलता मिली है।

अंत में, यही कहना पर्याप्त होगा कि भारत की स्वतंत्रता के पश्चात देश के ग्रामीण इलाकों में खुशहाली आई है, ग्रामीण और शहरी इलाकों की सुविधाओं में अंतर को कम किया गया है जिससे ग्रामीण व्यक्ति भी आधुनिक युग के सुख साधन का प्रयोग कर सकें। उनमें अपने गांवों को प्रगति के रास्ते पर ले जाने की तीव्र भावना पैदा हुई है।

साथ-साथ यह भी सही है कि यदि और प्रगति करनी है तो हमारे गांवों की बढ़ती हुई जनसंख्या को रोकना होगा, अन्यथा आवास, पेयजल, स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षा आदि की समस्याएं सुलझने के बजाय और भयंकर रूप ले सकती हैं। क्या सरकार इस ओर जागरूक है? यह एक बहुत बड़ा प्रश्न रह जाता है। इक्कीसवीं सदी में प्रवेश होने से पूर्व ही हम सबको—नागरिक व सरकार को गंभीर रूप से गांवों की बढ़ती आबादी की दर को स्थिर करने के बारे में ठोस कदम उठाने होंगे तभी हम गरीबी, बेरोजगारी, कम उत्पादकता जैसी समस्याओं से विश्वास के साथ जूझ सकेंगे। अन्यथा प्रगति की दौड़ में आगे होते हुए भी लगेगा कि हम वहीं हैं, जहां से दौड़ शुरू की थी। ❑

शिष्टाचार शारीरिक सुन्दरता के अभाव को पूर्ण कर देता है। केवल वही व्यक्ति सबसे अधिक सुन्दर है, जो अपने शिष्टाचार द्वारा दूसरों का हृदय जीत लेता है। शिष्टाचार के अभाव में सौन्दर्य का कोई मूल्य नहीं होता।

—चाणक्य

आज ही मंगाएं

पृष्ठ संख्या : 950

मूल्य : 220 रुपये

भारत सरकार का प्रामाणिक वार्षिक संदर्भ ग्रंथ

● पुस्तकालयों ● पत्रकारों ● अनुसंधानकर्ताओं ● छात्रों और ● प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वालों के लिए एक आवश्यक ग्रंथ।

अपनी प्रति स्थानीय एजेंट से खरीदें अथवा निम्नलिखित पते पर मनीआर्डर/ड्राफ्ट/ पोस्टल आर्डर भेजकर मंगाएं।

व्यापार व्यवस्थापक

प्रकाशन विभाग, *सूचना और प्रसारण मंत्रालय,*

पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001

निम्नलिखित स्थानों पर भी उपलब्ध है :

प्रकाशन विभाग के बिक्री केंद्र :

पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली; सुपर बाजार कनाट प्लेस, नई दिल्ली; हाल नं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली; राजाजी भवन, चेन्नई; 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता; बिहार राज्य सहकारिता बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ पटना; गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुअनंतपुरम; 27/6, राम मोहन राय मार्ग, लखनऊ; कामर्स हाउस, करीब भाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई; राज्य पुरातत्व संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन, हैदराबाद; प्रथम तल, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला बंगलौर, सी.जी. ओ. कमपलेक्स, 'ए' विंग, ए.बी रोड, इंदौर; 80 मालवीय नगर, भोपाल; के-21, नंद निकेतन, मालवीय मार्ग, 'सी' स्कीम, जयपुर।

नई पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत लगभग 34 लाख चुने हुए प्रतिनिधि देश भर में सदस्य और अध्यक्ष पदों पर हैं। इनमें एक-तिहाई महिलाएं हैं। चूंकि पंचायतों में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति का आरक्षण है, इनमें से लगभग 22 प्रतिशत इन वर्गों के प्रतिनिधि हैं। राज्यों में पंचायतों के चुनाव 1994, 1995 और 1996 में सम्पन्न हुए। अब तक कुछ राज्य जैसे—बिहार, जम्मू-कश्मीर, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली, पांडिचेरी और गोवा को छोड़कर सभी जगह चुनाव हो गए हैं।

प्रस्तुत लेख में पंचायतों का आजादी प्राप्त होने से अब तक का संक्षेप में इतिहास देते हुए, यह बताने का प्रयास किया गया है कि ग्रामीण विकास में उनकी क्या भूमिका रही है। उसके अतिरिक्त आगे आने वाले 15-20 वर्षों में पंचायतों की क्या स्थिति उभर कर आएगी, उस पर भी प्रकाश डाला गया है। लेख में ज्यादा 'फोकस' दूसरे भाग पर है।

पंचायती राज : अब तक और अगले डेढ़-दो दशक तक

डा. महीपाल

पंचायती राज अब तक

विदित है संविधान में पंचायती राज को शामिल कराने का श्रेय महात्मा गांधी को जाता है जिन्होंने उस समय के नेताओं को साफ बता दिया था कि यदि लोकतांत्रिक व्यवस्था का आधार पंचायतों को नहीं बनाया गया तो मेरे पास सलाह लेने के लिए आने की जरूरत नहीं। खैर, जैसे-तैसे पंचायतें संविधान का अंग तो बन गईं लेकिन उस समय इन्हें जीवंत संस्था बनाने के प्रयास नहीं किए गए। पंचायती राज व्यवस्था को खड़ी करने के बजाय सामुदायिक विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय विस्तार कार्यक्रम लागू किए गए जो लोगों की भागीदारी सुनिश्चित नहीं कर सके क्योंकि ये कार्यक्रम नौकरशाही प्रधान थे। खैर इन कार्यक्रमों की कमियों को जानने और विकास में लोगों की भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक अध्ययन दल गठित किया गया जिसने सुझाव दिया कि भारत में तीन-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था स्थापित की जाए ताकि ग्रामीण विकास में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित हो सके।

इस समिति की सिफारिशों को लागू करने के लिए कुछ राज्यों ने पंचायती राज व्यवस्था लागू तो कर दी, लेकिन इसे कारगर बनाने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाए। राज्य स्तर पर जब-जब नई राजनैतिक पार्टी की सरकार बनी, उसने पंचायतों के चुनाव करा दिए लेकिन उन्हें शक्ति और अधिकार नहीं दिए। 1978 में अशोक मेहता समिति ने पंचायतों को सशक्त बनाने के लिए विभिन्न सुझाव दिए। इस समिति के सुझावों को ध्यान में रखकर पश्चिम बंगाल, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश ने पंचायती राज व्यवस्था को मजबूत करने की पहल की, लेकिन इन तीनों राज्यों से तो सारा देश नहीं बना। पंचायतों में उच्च वर्ग का वर्चस्व था और इस तबके ने कमजोर तबके को भागीदार बनाने के बजाय उनकी भागीदारी का विरोध किया। दांतवाला की ब्लाक योजना समिति की रिपोर्ट में तो यहां तक लिखा है कि पंचायतों ने 'गेट कीपर' का कार्य किया और कमजोर वर्गों को पंचायतों में भागीदार होने से रोका। पंचायतों की वित्तीय स्थिति भी कमजोर थी क्योंकि इनके पास अपने साधन नहीं थे। राज्य सरकार से अगर अनुदान आ गया तो कार्य कर दिया, अन्यथा सब कुछ ठप्प।

अस्सी के दशक में केन्द्र सरकार ने अनेक ग्रामीण विकास कार्यक्रम शुरू किए। इन कार्यक्रमों के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में पैसा लगाने के लिए जिला स्तर पर जिला पंचायत को प्रयोग करने के बजाय जिला ग्रामीण विकास एजेंसी की स्थापना कर दी। लेकिन यह बराबर महसूस किया जा रहा था कि जब तक ग्रामीण कार्यक्रमों में ग्रामीण समाज के सभी वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित नहीं होगी, तब तक ग्रामीण विकास के कार्यक्रम प्रभावी ढंग से लागू नहीं होंगे। 1980 में एल.एम. सिंघवी समिति ने पंचायतों को संवैधानिक दर्जा देने की सिफारिश की थी। इस प्रकार कुल मिलाकर 1992 में पंचायती राज विधेयक पास हुआ और राष्ट्रपति के

हस्ताक्षर होने के बाद 24 अप्रैल 1993 को अधिनियम बना। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताओं में ग्रामसभा को संवैधानिक दर्जा, तीन-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था, अनुसूचित जाति, जनजाति को उनकी आबादी के अनुसार सदस्यों तथा अध्यक्ष के पद के लिए आरक्षण, महिलाओं (जिनमें अनुसूचित जाति/जनजाति की महिलाएं भी शामिल हैं) के लिए कम-से-कम एक-तिहाई आरक्षण, पांच वर्ष का कार्यकाल, हर पांच वर्ष के बाद वित्त आयोग का गठन तथा पंचायतों के चुनाव राज्य चुनाव आयोग के निरीक्षण तथा नियंत्रण में कराना शामिल हैं।

इसमें कोई दो राय नहीं कि इस संविधान संशोधन ने पंचायतों को नया जीवन दिया। वैसे अधिनियम में पंचायतों के कार्यों के लिए 29 विषयों की सूची दी गई है, लेकिन विभिन्न पंचायत स्तरों के क्या-क्या कार्य होंगे—यह सूचीबद्ध नहीं किया गया है। अधिनियम ने पंचायतों को शक्ति और दायित्व देने का अधिकार राज्य विधान मंडलों को दिया है। लेकिन राज्य सरकारों ने पंचायतों को अधिकार तथा शक्तियों के नाम पर अंगूठा दिखा दिया है।

तत्कालीन ग्रामीण विकास मंत्री श्री वेंकट स्वामी ने इस विधेयक को संसद में प्रस्तुत करते हुए कहा था कि यह विधेयक पंचायतों को स्वायत्त शासन की संस्थाएं बनाते हुए महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज के सपने को साकार करने का प्रयास है। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। केन्द्र तथा राज्य स्तर के नेताओं ने प्रबल राजनैतिक इच्छा नहीं दिखाई। राज्यों को 73वें संविधान संशोधन को ध्यान में रखकर अपने अधिनियमों में संशोधन करना था। इसके लिए एक वर्ष का समय था। लेकिन उन्होंने इसे अंतिम तिथि पर ही पारित किया। इस अधिनियम की धारा 243-जी के अनुसार पंचायतों को स्वायत्त शासन की संस्था बनाना था। लेकिन इसे ध्यान में नहीं रखा गया। अधिनियम पारित होने के बाद चुनाव छह महीने में कराने थे, लेकिन चुनाव एक वर्ष के दौरान भी नहीं कराए गए। अधिकार तथा शक्तियों के हस्तांतरण के बारे में भी केरल, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों को छोड़कर अन्य राज्यों ने कोई खास उत्साह नहीं दिखाया। मध्य प्रदेश जैसे कुछेक राज्यों ने तो जो कुछ अधिकार और शक्तियां पंचायतों को दी भी थीं, उनको भी वापिस लेने की प्रक्रिया शुरू कर दी है।

अगले डेढ़-दो दशक तक

यह सही है कि अधिकार और शक्तियों के बारे में राज्य सरकार ने उत्साह नहीं दिखाया है। लेकिन पंचायती राज अधिनियम ने ग्रामीण, दलित, पिछड़ों, महिलाओं की छिपी ऊर्जा को उजागर किया है। आगे 15 या 20 वर्षों में पंचायती राज व्यवस्था की तसवीर बदलेगी। पंचायतों को वित्तीय साधन राज्य तथा केन्द्र स्तर से हस्तांतरित होंगे। कर तथा गैर-कर सभी आय के स्रोतों में पंचायतों का हिस्सा निर्धारित होगा। पंचायतें स्वयं भी अपने-आप को स्वायत्त शासन की संस्था बनाने के लिए साधन मुहैया करेंगी। चूंकि अब चुनाव हर पांच वर्ष के बाद होने अनिवार्य हैं, इसलिए हर पांच वर्ष बाद नये-नये चेहरे पंचायतों में आएंगे। उनमें चाह होगी कि वे अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के रूप में अच्छा कार्य करके दिखाएं।

पंचायत प्रतिनिधियों, सांसदों तथा विधायकों में टकराव होगा। वास्तव में पंचायतों ने सत्ता का एक और केन्द्र जिला और उससे निचले स्तर पर स्थापित कर दिया है। चूंकि पंचायत प्रतिनिधि जनता के ज्यादा नजदीक होते हैं, वे ग्रामीणों की रोजमर्रा की समस्याओं को सुलझाने में सफल हैं, इसलिए सांसदों और विधायकों का दबदबा कुछ कम होगा। इसके अतिरिक्त सांसद के लिए जैसे एक करोड़ रुपये की स्कीम उसके चुनाव क्षेत्र के लिए है, और विधायकों के लिए भी इसी प्रकार की स्कीमें विभिन्न राज्यों में हैं, पंचायत प्रतिनिधि भी आने वाले समय में इसी तरह की स्कीमों की मांग करेंगे क्योंकि उनका भी तो अपना चुनाव क्षेत्र है, जिसे उन्हें पोषित करना है। लेकिन इस तरह का वातावरण पंचायती राज व्यवस्था के विकास के अनुकूल नहीं होगा। अब भी सांसद या विधायक की स्कीमें पंचायतों के विकास के लिए ठीक नहीं हैं। ऐसा करने से विकेंद्रीकृत योजना खटाई में पड़ जाएगी और ऐसा वातावरण बनेगा कि अंधा बांटे रेवड़ी, फिर-फिर अपने को ही दे। लेकिन इसका दूसरा पक्ष यह भी हो सकता है कि जब पंचायत प्रतिनिधियों से अपने चुनाव क्षेत्र के लिए पैसे की मांग हो (जो होगी भी, क्योंकि भारत में लगभग इस समय 34 लाख प्रतिनिधि पंचायत में हैं) तो संभव है कि वर्तमान में चल रही स्कीमों को समाप्त करने पर पुनः विचार हो और इस तरह की योजनाओं का पैसा पंचायतों के माध्यम से विकेन्द्रीकृत योजनाओं द्वारा व्यय हो।

वर्तमान में पंचायतों के पास अपने अधिकारी तथा कर्मचारी नहीं हैं। अगर कहीं गुजरात व राजस्थान में पंचायतों के वर्ग 'डी' और 'सी' के कर्मचारी हैं भी तो उन पर भी राज्य सरकार का नियंत्रण है। आने वाले समय में ज्यों-ज्यों पंचायत प्रतिनिधियों को स्वायत्त शासन की संस्था के रूप में अपनी शक्तियों का ज्ञान होगा, तैसे-तैसे ये प्रतिनिधि चाहेंगे कि पंचायतों में कार्य कर रहे अधिकारी तथा कर्मचारी उनके नियंत्रण में हों। लेकिन इन अधिकारियों तथा कर्मचारियों को यह पसंद नहीं होगा। इससे दोनों में टकराव होगा। लेकिन इससे पंचायतें मजबूत होंगी क्योंकि इस समस्या के समाधान के लिए पंचायतों के लिए अलग से 'पंचायत कैडर' बनाना ही पड़ेगा जो संपूर्ण रूप से पंचायतों के नियंत्रण में होगा। जिला स्तर की नौकरशाही तथा पंचायत प्रतिनिधियों में (खासतौर से जिला तथा ब्लाक स्तर के) टकराव एक-दूसरे रूप में ही उभर कर आएगा। वास्तव में जिला स्तर की नौकरशाही खासतौर से आई.ए.एस. अधिकारी नहीं चाहेंगे कि पंचायत प्रतिनिधि जनपद की सरहद पार कर राज्य स्तर की लीडरशीप से अपने सीधे संबंध स्थापित करें क्योंकि ऐसा करने से इन अधिकारियों की शक्ति कम हो जाएगी। अतः ये अधिकारी राज्य स्तर की नौकरशाही से संबंध स्थापित कर पंचायत अधिनियमों में ऐसा प्रावधान न होने देने की कोशिश करेंगे जिससे पंचायत प्रतिनिधियों का पलड़ा भारी हो।

ग्रामीण स्तर पर दलित तथा उच्च वर्ग के बीच टकराव पैदा होगा। दलितों को आरक्षण मिलने से इनमें से वे लोग जो सदस्य अथवा अध्यक्ष

चुनकर आए हैं, इससे ग्रामीण समाज का उच्च वर्ग परेशान है क्योंकि ग्रामीण सत्ता उनके हाथ से निकलती जा रही है। इस तरह के वातावरण में ये वर्ग दलित समाज को परेशान करेंगे और उन्हें अपने अधिकारों को इस्तेमाल करने देने में रोड़ा अटकाएंगे। लेकिन ऐसा करने से दलित समाज पहले से ज्यादा संगठित होगा जिससे संपूर्ण पंचायती राज व्यवस्था और दलित समाज मजबूत होगा। चूंकि समाज के गरीब तबके को संगठित करने में स्वैच्छिक संस्थाओं की भूमिका भी होगी जिनसे ग्रामीण समाज के उच्च वर्ग का टकराव होगा। लेकिन स्वैच्छिक संस्थाओं का सुरक्षा-कवच स्वयं गांव का दलित समाज ही बनेगा। अगर कहीं ऐसा नहीं होता है तो इसका अर्थ यह होगा कि स्वैच्छिक संस्थाओं को दलित समाज को संगठित करने के लिए और अधिक प्रयास करने की जरूरत होगी।

महिलाएं अधिक मुखर होंगी। प्रधान पति पद जो इस समय चलन में है अर्थात महिला प्रधान कुछ न करके, उसका पति ही सब कुछ कर रहा है, यह भी कम होता जाएगा। विभिन्न जाति तथा धर्म की महिलाओं में एकता होगी। वे सोचेंगी कि हमें जाति तथा धर्म से क्या लेना-देना है। हमें तो संगठित होकर पुरुष-प्रधान व्यवस्था से टक्कर लेनी है। आने वाले समय में साक्षर महिलाएं ही पंचायत प्रतिनिधि चुनकर आएंगी। इस समय जो निरक्षर महिलाएं पंचायतों में कार्यरत हैं, वे अनपढ़ होने की वजह से अपने आपको असहाय महसूस करती हैं। कहीं उनकी आगे आने वाली संतान भी असहाय महसूस न करे, इसके लिए वे अपने बच्चों को विशेष रूप से लड़कियों को विद्यालय भेजेंगी। इससे ग्रामीण क्षेत्र में आगे आने वाले दो दशकों में लड़कियों की साक्षरता दर तेजी से बढ़ेगी।

संसद और विधान मंडलों में महिलाओं का एक-तिहाई आरक्षण का विधेयक फिलहाल तो खटाई में पड़ गया है, लेकिन ऐसा अधिक समय तक नहीं रहेगा। जल्द ही यह विधेयक पास होगा और पारित होने के बाद जो महिलाएं इन संस्थाओं में चुनकर आएंगी, उनका पंचायत स्तर की महिलाओं तक 'नेट वर्क' होगा जिसके कारण पंचायत में महिलाओं को और अधिक सशक्त होने का अवसर मिलेगा।

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से 73वां संविधान संशोधन पारित होने तक पंचायती राज व्यवस्था में कुछ अपवादों को छोड़कर कोई खास विकास नहीं हुआ था। लेकिन 73वें संविधान संशोधन लागू होने के बाद के इन पांच वर्षों में गांव के गरीब समाज तथा महिलाओं की आकांक्षाएं बहुत बढ़ गई है। उन्हें यह महसूस हो रहा है कि उनकी भी भागीदारी राष्ट्र के विकास में है। आगे 15-20 सालों में पंचायतों का विकास तेजी से होगा। आरक्षण द्वारा और बिना आरक्षण के लगभग 34 लाख व्यक्तियों की भागीदारी हर पांच वर्ष के लिए सुनिश्चित होगी, यह ग्रामीण विकास की दर को आगे ले जाएगी। आने वाले समय में जो तनाव और टकराव का जिक्र किया है, उसी से विकास का रास्ता निकलेगा क्योंकि स्थापित ताकतें महसूस करेंगी कि सत्ता और प्रभुसत्ता उनकी बपौती नहीं है, यह जनता की है जो इन्हें वापिस ले रही है। ❑

साहित्य और पत्रकारिता पर पढ़िए

प्रकाशन विभाग

द्वारा प्रकाशित

ज्ञानवर्द्धक एवं विचारोत्तेजक पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	मूल्य
अज्ञेय अपने बारे में	संपा: मधुकर लेले (लाइब्रेरी)	55.00
	(पेपर बैक)	40.00
अक्षरों की अंतर्ध्वनि	अमृता प्रीतम	15.00
शमशेर बहादुर सिंह	संकलन	70.00
हिंदी और उसकी उपभाषाएं	डॉ. विमलेश कांति वर्मा	200.00
हिंदी : विकास और संभावनाएं	डॉ. कैलाश चंद्र भाटिया	100.00
प्रेमचंद की विचार यात्रा	कमर रईस	30.00
आदिकवि महर्षि वाल्मीकि	सुखबीर सिंह	11.00
अमीर खुसरो	सोहन पाल सुमनाक्षर	15.00
आकाशवाणी	राम बिहारी विश्वकर्मा	16.00
भारत में जनसंवाद	महावीर सिंह	50.00
भारतीय विज्ञापन में नैतिकता	मधु अग्रवाल	45.00
दूरदर्शन : दशा और दिशा	सुधीश पचौरी	
भाग-- I		60.00
भाग--II		25.00
हिंदी के यशस्वी पत्रकार	क्षेम चंद्र सुमन	30.00
जनसंपर्क	मदन गोपाल	15.00
पत्र, पत्रकार और पत्रकारिता	राजेंद्र शंकर भट्ट	30.00

इन स्थानों पर उपलब्ध हैं :

विक्रय केंद्र : प्रकाशन विभाग

पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, **नई दिल्ली**; सुपर बाजार, कनॉट सर्कस, **नई दिल्ली**; हाल नं. 196, पुराना सचिवालय, **दिल्ली**; राजाजी भवन, बेसेंट नगर, **चेन्नई**; 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, **कलकत्ता**; बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, **पटना**; प्रेस रोड, **तिरुअनंतपुरम**; 27/6, राममोहन राय मार्ग, **लखनऊ**; कॉमर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालॉर्ड पायर, **मुंबई**; राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डंस, **हैदराबाद**; पहली मंजिल, एफ विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, **बंगलौर**

बिक्री काउंटर : पत्र सूचना कार्यालय

सी. जी. ओ. कॉम्प्लैक्स, ए विंग, ए. बी. रोड, **इंदौर**; 80, मालवीय नगर, **भोपाल**; के-21, नंद निकेतन, मालवीय मार्ग, सी स्कीम, **जयपुर**

स्वतंत्रता के पचास वर्ष और सफाईकर्मी वर्ग की स्थिति : एक आकलन

संदीप जोशी*

हमारा राष्ट्र स्वतंत्रता के 50 वर्ष पूर्ण कर चुका है। स्वतंत्रता के इस महत्वपूर्ण मुकाम पर पहुंचकर अब हम इस स्थिति में हैं कि इन वर्षों में विकास तथा सामाजिक बदलाव के लिए किए गए प्रयासों और सफलताओं-असफलताओं पर विचार करें, उनका मूल्यांकन करें और आने वाले वर्षों के लिए इन अनुभवों के आधार पर एक वैज्ञानिक और सामंजस्यपूर्ण दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास करें।

इस संदर्भ में जवाहरलाल नेहरू द्वारा 14 अगस्त 1947 को संविधान परिषद में दिए गए भाषण के कुछ वाक्यांश उद्धृत हैं—

"....एक ऐसा क्षण होता है, जो कि इतिहास में कम ही आता है, जबकि हम पुराने को छोड़कर नए जीवन में पग धरते हैं, जबकि एक युग का अंत होता है, जबकि राष्ट्र की चिर दलित आत्मा उद्धार प्राप्त करती है। यह उचित है कि इस गंभीर क्षण में हम भारत और उसके लोगों तथा उससे भी बढ़कर मानवता के हित के लिए सेवा अर्पण करने की शपथ लें। यह भविष्य आराम करने और दम लेने के लिए नहीं है बल्कि निरंतर प्रयत्न करने के लिए है, जिससे कि हम उन प्रतिज्ञाओं को, जो हमने इतनी बार की हैं, और उसे जो आज कर रहे हैं, पूरा कर सकें। भारत की सेवा का अर्थ करोड़ों पीड़ितों की सेवा का है। इसका अर्थ दरिद्रता और अज्ञान तथा अवसर की विषमता का अंत करना है। हमारी पीढ़ी के सबसे बड़े आदमी की यह आकांक्षा रही है कि प्रत्येक आंख के प्रत्येक आंसू को पोंछ दिया जाए। जब तक आंसू हैं और पीड़ा है, तब तक हमारा काम पूरा नहीं होगा...."

मुझे लगता है कि नेहरू जी द्वारा 50 वर्ष पूर्व कहे गए उक्त वाक्यांश आज भी उतने ही ग्राह्य हैं जितना उस समय थे। यद्यपि स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरांत भारत के संविधान में दलितों की सामाजिक निर्योग्यताओं के निवारणार्थ तथा उनके अन्य हितों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से कुछ प्रावधान किए गए थे, जिनमें अस्पृश्यता निवारण, सामाजिक अन्याय तथा विविध प्रकार के शोषण से बचाव, धार्मिक संस्थाओं में सभी व्यक्तियों का प्रवेश, कुंओं एवं तालाबों का उपयोग, रेस्टोरेंट्स व दुकानों में प्रवेश, वर्जनाओं का निवारण, शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश प्राप्त करने का अधिकार, राज कोष से सहायता राशि प्राप्त करना, सेवाओं में आरक्षण, लोकसभा और विधानसभाओं में समुचित प्रतिनिधित्व, उनके हितार्थ और कल्याण कार्यों को प्रोत्साहित करने के लिए पृथक सलाहकार समितियों एवं विभागों की स्थापना, बेगार श्रम का निषेध, अनुसूचित क्षेत्रों के नियंत्रण-प्रशासन आदि के लिए विशेष प्रावधानों को सम्मिलित करना आदि उल्लेखनीय हैं। परंतु क्या इन उपायों-प्रावधानों ने दलितों के उत्थान में योगदान दिया है? क्या आजादी के 50 वर्षों बाद भी गांधी जी के सपनों वाली आजादी आई है? हम पाते हैं कि स्वच्छ सार्वजनिक जीवन, दलितों और पिछड़ों को बुनियादी सुविधाएं, उन्हें अधिकार प्रदान करने के मामले में हमें अभी लंबी दूरी तय करनी है। अभी भी करोड़ों लोगों की आंखों में वो आंसू हैं जिन्हें गांधी जी पोंछना चाहते थे। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री इन्द्र कुमार गुजराल ने भी 51वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर 15 अगस्त 1997 को लाल किले की प्राचीर से राष्ट्र को संबोधित करते हुए कहा "कमजोर वर्ग, विशेषकर सफाई कर्मचारी, आज समाज का सर्वाधिक पिछड़ा वर्ग है।" यह वाक्य इस तथ्य की पुष्टि करता है कि सफाई कर्मियों की स्थिति सामाजिक और आर्थिक रूप से अभी भी दयनीय और शोचनीय है।

इसका यह आशय कदापि नहीं है कि स्थितियों में—चाहे वे सामाजिक उत्थान से संबद्ध हों अथवा आर्थिक उत्थान से—इन 50 वर्षों में कोई बदलाव नहीं आया है। पिछले 50 वर्षों की हमारी उपलब्धियां भी कम नहीं रही हैं, परंतु निश्चित रूप से देश की सामाजिक और आर्थिक प्रगति उसकी क्षमताओं तथा उम्मीदों से कम हुई है। यदि हम देश के आकार और विभिन्नताओं को दृष्टिगत रखकर परिदृश्य को देखें तो हमने लगभग हर क्षेत्र में उपलब्धियां अर्जित की हैं। यह बात और है कि कहीं यह उपलब्धियां स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं, तो कहीं हमें उनकी झलक पाने के लिए केनवास को कुरेदना पड़ता है।

हम भले ही संविधान की भावनाओं के अनुरूप आदर्श स्थिति को प्राप्त नहीं कर सके हैं, परंतु आज उन जातियों और वर्गों को, जिनके यहां

*संकाय सदस्य, मध्य प्रदेश सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, महाश्वेतानगर, उज्जैन (म.प्र.)

पढ़ने-लिखने का रिवाज नहीं था, शिक्षा के दायरे में लाने में सफलता प्राप्त हुई है। आज विश्वविद्यालयों में जिस बड़ी संख्या में दलित वर्ग के छात्र-छात्राएं आ रहे हैं, उस पर हम गर्व कर सकते हैं। वस्तुत: आज विश्वविद्यालयों में जितने दलित विद्यार्थी हैं, 1947 में देश के पूरे स्नातकों की संख्या उतनी रही होगी। निश्चित रूप से व्यापक सामाजिक जागृति ने देश की व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान बनाया है।

इस पृष्ठभूमि के रहते 'दलितों में भी दलित' अर्थात सफाई कार्य में लिप्त सफाई कर्मियों की वर्तमान स्थिति एवं उनकी कुछ समस्याओं पर प्रकाश डालना जरूरी है, जो आज भी व्यावहारिक तौर पर अस्पृश्यता व भेदभाव के सबसे ज्यादा शिकार हैं और मैला ढोने के अमानवीय और घृणित पैतृक धंधे से अपने आपको मुक्त नहीं करा पाए हैं।

वर्ण व्यवस्था जिसे संभवत: 'श्रम विभाजन' को ध्यान में रखकर शुरू किया गया था, शनै: शनै: समाज का विभाजन करने में परिवर्तित हो गई। इस व्यवस्था ने कृषि और सामाजिक सेवा करने वाले वर्ग को शूद्र, अछूत और दलित का नाम दे दिया। यह व्यवस्था निरंतर पतितावस्था को प्राप्त होती गई और उसने समाज के श्रमिकों को मौलिक अधिकारों तक से वंचित कर दिया। जाति और वर्ण की इस व्यवस्था में सामाजिक स्थिति और प्रतिष्ठा की दृष्टि से सफाई कर्मियों का स्थान लगभग सबसे नीचे हो गया। इसका कारण यह है कि वे जिस व्यवसाय में लिप्त हैं, वह सामाजिक दृष्टि से निम्न और घृणित माना जाता है।

जनसंख्या का पता लगाया जाए

वर्तमान समय में इनकी जनसंख्या कितनी है, इसकी सही-सही जानकारी उपलब्ध नहीं है। 'स्वच्छकार विमुक्ति एवं पुनर्वास योजना' हेतु योजना आयोग द्वारा गठित कार्यदल ने मार्च 1991 में प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन में इनकी संख्या 4,01,000 बताई है। प्रोफेसर श्यामलाल ने संपूर्ण देश में इनकी संख्या साठ लाख होने का अनुमान व्यक्त किया है। कुछ अन्य विद्वानों की मान्यता है कि देश में लगभग 20-21 लाख सफाईकर्मी इस कार्य में लिप्त होंगे। कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के अनुसार इनकी जनसंख्या सात लाख से ऊपर है। प्रश्न उठता है कि जब हमें इनकी वास्तविक जनसंख्या की ही जानकारी नहीं है, तो इनके पुनर्वास हेतु बनाई गई योजनाएं क्या अपने निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त कर सकेंगी? इसीलिए इनके कल्याणार्थ बनाई गईं योजनाएं अभी तक इनकी अतिदीनता की अवस्था को ही दूर नहीं कर पाई हैं, गरीबी हटाने अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा की बात तो दूर रही।

यह वर्ग सामाजिक-आर्थिक रूप से सर्वाधिक पिछड़ा है, अत: यह बहुत आवश्यक है कि संपूर्ण देश में इनकी वास्तविक जनसंख्या ज्ञात करने का कार्य स्वतंत्र, स्वायत्त व प्रतिष्ठित संस्थाओं के माध्यम से सम्पन्न कराया जाए।

विसंगतियां

विभिन्न शासकीय योजनाओं में इस वर्ग के लोगों को लाभ प्रदान किए जाने में भी अनेक विसंगतियां दृष्टिगोचर होती हैं। पन्ना जिले में 'समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम' के प्रभाव का अध्ययन करने पर यह पाया गया कि अध्ययन के लिए इस वर्ग से चयनित हितग्राहियों में से 80 प्रतिशत को केवल सूअर पालन के लिए ऋण प्रदान किया गया। इसी तरह अन्य स्वच्छकार विमुक्ति एवं पुनर्वास योजनाओं में भी यह देखा गया है कि पैतृक व्यवसाय से संबद्ध गतिविधियों के लिए ही इन्हें ऋण स्वीकार किया जाता है, जो न तो इनके पुनर्वास में ही सहायक होता है और न ही उचित प्रतीत होता है। वस्तुत: आवश्यकता इस बात की है इन्हें ऐसे व्यवसायों में पुनर्वासित किया जाए जो इन्हें समाज में प्रतिष्ठा प्रदान कर सकें।

भेदभाव

एक समस्या 'सुलभ काम्प्लेक्सों' के संचालन को लेकर है जिसमें इस वर्ग के व्यक्तियों के साथ भेदभाव और शोषण हो रहा है। मध्य प्रदेश सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन द्वारा सफाई कर्मचारियों हेतु आयोजित एक कार्यशाला के दौरान सफाई कर्मचारियों से बातचीत में उन्होंने इस तथ्य को रेखांकित किया कि सुलभ काम्प्लेक्स के ठेके बड़े और प्रभावी लोगों द्वारा ले लिए जाते हैं परंतु उनमें सफाई का कार्य सफाईकर्मियों से ही बहुत कम वेतन देकर करवाया जाता है। इस तरह उनका आर्थिक तथा शारीरिक शोषण किया जाता है। होना यह चाहिए कि जो सफाईकर्मी सफाई कार्य को अंजाम देते हैं, उन्हें ही सुलभ काम्प्लेक्स का ठेका दिया जाए ताकि वे शोषण का शिकार न हों।

अनुसूचित जाति वर्ग के छात्र/छात्राओं के लिए अलग छात्रावास बनाने की योजना भी इस वर्ग के छात्र-छात्राओं की विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के परिसर में पृथक पहचान बनाने में सहायक हो रही है। अलग छात्रावासों में रहने के फलस्वरूप वे अपने आपको अन्य विद्यार्थियों से कटा हुआ महसूस करते हैं और अनायास ही हीन भावना के शिकार हो जाते हैं। यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है कि चूंकि इस वर्ग के विद्यार्थियों को विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में अन्य समस्त वर्ग के विद्यार्थियों के साथ ही शैक्षणिक तथा अन्य गतिविधियों में भाग लेना होता है। इसलिए क्या उनके लिए पृथक छात्रावासों की व्यवस्था उचित है? इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है कि पृथक छात्रावास बनाए जाने की नीति को बदला जाए और इस वर्ग के समस्त विद्यार्थियों को सामान्य वर्ग के ही विद्यार्थियों के साथ रखने संबंधी नीति बनाने की संभावनाओं को तलाशा जाए। इससे वे पृथक पहचान तथा दूसरे दर्जे के नागरिक होने के बोध और मानसिक पीड़ा से मुक्ति पा सकेंगे। यही बात इस वर्ग के लोगों के पृथक कालोनियों में रहने पर भी लागू होती है।

आरक्षण के मुद्दे पर सफाईकर्मियों की समस्या दलित वर्ग के अन्य घटकों की अपेक्षा कुछ अलग तरह की है। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि अनुसूचित जातियों के लिए निर्धारित आरक्षण में सफाईकर्मियों को छुआछूत और उनके पारंपरिक व्यवसाय की पृष्ठभूमि के रहते नौकरियां प्रदान करने में भेदभाव किया जाता है। यह भेदभाव चतुर्थ श्रेणी के गैर-सफाई कार्य से संबद्ध सेवाओं में प्रमुख रूप से हो रहा है, जहां वे आरक्षण के बावजूद नौकरियां पाने में विफल रहते हैं क्योंकि जनप्रतिनिधि और अधिकारीगण

(शेष पृष्ठ 24 पर)

परिन्दे

दिलीप कुमार तेतरवे

भोजन की तलाश में हजारों-हजार परिन्दे काफिले में निकल पड़ते हैं। जीने की चाहत उनके कोमल पंखों में न जाने कहां से इतनी शक्ति भर देती है कि वे समुद्र भी लांघ जाते हैं। उनकी लंबी यात्रा सबके लिए शुभ नहीं होती। हर पड़ाव पर व्याधे जाल बिछाए छिपे बैठे होते हैं। भोजन तलाशते अनके परिन्दे अपने यौवन में ही किसी का भोजन बन जाते हैं। कई परिन्दों के जोड़े बिछुड़ जाते हैं। ब्रह्मांड बार-बार आर्तनाद कर उठता है—"मा निषाद प्रतिष्ठाम् त्वमगमः। यत्क्रौचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥....." विडंबना है कि इसी पृथ्वी पर कुछ मानव समूह भी परिन्दों की तरह भोजन की तलाश में कंकरीट के जंगलों में भटकते हैं और अनेकानेक वधिकों से त्रस्त रहते हैं।

दूर पहाड़ी के बीच एदलहातू गांव है। कल सुबह ही मजदूर ठेकेदार चरका, बस लेकर आने वाला है। पूरे गांव में उदासी छाई हुई है। गांव के सभी स्त्री-पुरुष मजदूर सुबह होते ही निकल पड़ेंगे, किसी दूर प्रदेश में स्थित चायबगान की ओर..... क्षुधा मिटाने की दौड़ में शामिल होने के लिए।.....

"का खाबे बुधुआ?..... अपनी पसंद का खाना बताओ, वही बना दूंगी....."

"रहे दे मंगरी..... आज मुझे कुछ भी खाने का मन नहीं कर रहा..... सुबह जो भात बनाई थी, उसी में पानी, नमक और थोड़ी लाल मिर्च मिला कर दे देना....."

"बुधुआ, अपने साथ-साथ दुतिया का भी ख्याल रखना..... वह सोलह बरस की हो गई है..... ठेकेदार चरका उसको उस दिन घूर-घूर कर देख रहा था।"

"मंगरी, तुम दुतिया की चिंता मत करो। मैं मजदूरों का मेट बन कर जा रहा हूं। मेट की बेटी को मालिक भी छूने की हिम्मत नहीं करता है। चरका बदमाश जरूर है, पर वह मुझसे दो बार उलझ कर हार चुका है।"

"बस-भाड़ा और कमीशन के पैसे, चरका को किसके सामने गिन के दिए थे? देखो, वे रुपये घर के सारे बर्तन बंधक रख कर तुमको दिए हैं, इसलिए ही यह सवाल पूछ रही हूं।"

"चरका को सारे रुपये मैंने मतलु और सघनु के सामने ही गिन कर दिए हैं,वह बेईमानी नहीं कर सकता, समझी? मुझे तो बस यही चिंता है कि अब बर्तन के अभाव में तुम खाना कैसे रांधोगी?"

"जैसे आज रांधी थी..... मिट्टी के बर्तन में..... बुधुआ, तुम यहां की बिल्कुल चिंता नहीं करो..... जैसा भी है यह मेरा गांव है..... मैं यहां ठीक-ठाक से रह लूंगी..... बस, सिंगबोंगा से यही मनाती हूं कि तुम और दुतिया इतने रुपये कमा कर लाओ कि फिर से हम अपनी खेती शुरू कर सकें। अपने खूंटे पर एक जोड़ा बैल बांध सकें।..... तुमको फिर से बाहर न जाना पड़े....."

दोनों के बीच अभी कुछ और दुनियादारी की बातें होतीं, लेकिन मजदूर नेता भीखू के दरवाजे पर दस्तक देते ही, बातचीत का सिलसिला टूट गया।

"बुधुआ, सुना है कि तुम लोग चरका के साथ चायबगान जा रहे हो?"

"हां भीखू भइया, मैं चायबगान जा रहा हूं..... दुतिया भी साथ जा रही है....."

"देखो बुधुआ, चरका मजदूर दलाल है। वह मजदूरों का अवैध व्यापार करता है। वह मजदूरों को दूसरे राज्य ले जाते हुए, मजदूरों का पंजीकरण भी नहीं करवाता। वह तुम लोगों की मेहनत की कमाई से कमीशन भी खा जाता है। मैं चाहता हूं कि तुम मजदूरों को संगठित करो..... मजदूर कोआपरेटिव बनाओ..... शोषित होने के लिए चरका के साथ मत जाओ....."

"भीखू भाई, अब मैं आखरी बार कमाने के लिए बाहर जा रहा हूं। सिंगबोंगा हमारी रक्षा करेंगे और चरका से अगर लड़ भी जाऊं, तो क्या होगा? वह मुझे छोड़ कर अन्य मजदूरों के साथ चला जाएगा। मेरे रोकने पर भी कोई मजदूर रुकेगा नहीं। सभी के सामने धनाभाव है। अनेक समस्याएं हैं, जिनका निदान इस गांव में बेरोजगार पड़े रहने से नहीं होगा। वैसे, आप प्रयास करें तो मैं आपका पूरा-पूरा साथ दूंगा।"

भीखू भाई मजदूरों के संबंध में बहुत-सी गंभीर बातें करके चले गए। धीरे-धीरे रात गहराने लगी..... विदा की काली रात सांय-सांय करने लगी..... बीच-बीच में सियारों के हुआं-हुआं का स्वर वातावरण को और गमगीन करता चला जा रहा था..... बुधुआ बोथल भात (पानी में डाला भात) खाकर, चटाई पर पड़ गया था। उसे नींद नहीं आ रही थी। वह बार-बार करवटें बदल रहा था। वह अंदर ही अंदर बहुत घबराया हुआ था। उसके मन में बहुत बेचैनी थी.....

'रतिया का बाप कितना सीधा-सादा था.....' चायबगान से चलने लगा तो मैनेजर ने उससे कहा—'तुम्हारे ऊपर सात सौ रुपये निकलते हैं।..... मालिक अब तुम जैसे बूढ़े मजदूर को रखना नहीं चाहता। अपनी बेटी रतिया को मालकिन की सेवा में छोड़ जाओ। बाद में, सात सौ रुपये चुकता करके अपनी बेटी को ले जाना.....'

'रतिया का बाप कितना रोया-गिड़गिड़ाया था।..... छह-सात महीने बाद रतिया का बाप अपनी जमीन बेच कर, सात सौ रुपये के साथ, बंधक पड़ी रतिया को छुड़ाने आया था..... रतिया जब मालिक की कोठी से निकली थी, तब का दृश्य याद कर मन-प्राण कांप उठता है..... जमीन में समा जाने का मन करता है..... रतिया के भारी पांव..... और रतिया के बाप की बेबसी..... उसकी आंखों का दर्द..... पत्थर पिघल गया था उस दिन..... सूरज ने मुंह छिपा लिया था.....'

'पता नहीं, इस बार दुष्ट चरका मुझे किस चायबगान में ले जाकर छोड़ेगा। गांव छोड़ने का मन ही नहीं करता..... मन करता है कि पहले की तरह खेत में दिन भर मेहनत करूं..... शाम को अखरा (नृत्य-स्थल) में जाकर नृत्य करूं..... मांदर की थाप हो..... बांसुरी की तान हो..... होठों पर मस्ती भरे गीत हों..... दिन भर की

थकान उतर जाए..... पर आज अखरा में कौन नाचेगा? हर झोपड़ी पर उदासी की मटमैली छाया है..... हर व्यक्ति थका-हारा है..... लाचार है..... मैं कामना कर रहा हूं कि सुबह हो ही नहीं..... लेकिन प्रकृति का नियम मेरे चाहने से नहीं बदल सकता.....'

'मेरा प्यारा मुर्गा दारा, चाहे तो सुबह न हो..... अगर आज वह बांग न लगाए तो सूरज अपनी सोने की कोठी में सोया ही रह जाएगा और सुबह नहीं हो पाएगी।'

'दारा दस बार मुर्गा-लड़ाई में जीत का सेहरा पहन चुका है। पिछले शनिचरा बाजार में चरका के मुर्गे जितवा से उसकी जबरदस्त टक्कर हुई थी..... मेरा मन तो कई बार कांप उठा था..... चरका का क्या भरोसा? उसने कहीं जितवा को हड़िया (चावल की बनी शराब) न पिला दी हो! जितवा गरदन के पर फैलाए, अपने पैर की पैनी छुरी का निशाना दारा पर लगा कर लगातार हमले कर रहा था..... लेकिन अपना ठिगना दारा शायद उस दिन मेरे लिए लड़ रहा था..... मेरी इज्जत के लिए लड़ रहा था..... वह भी पैंतरे बदल-बदल कर जितवा पर हमले करने लगा..... उस दिन उसने अपना जीवन दांव पर लगा दिया था..... चरका ने जितवा की हार को अपनी हार मानते हुए मुझे धमकी दी थी, 'मैं तुमको देख लूंगा..... दारा को क्या खिला कर लाया था?.....'' लेकिन लड़ाई देख रहे लोगों ने चरका को खूब बुरा-भला कहा था.....'

'मालिक लोग भी अपने मजदूरों को अपने दरबे का मुर्गा ही समझते हैं..... जब चाहा, उनके बीच मुर्गा-लड़ाई करवा दी और जब चाहा, उसे हलाल कर दिया.....'

सहसा बुधुआ को अपने प्रथम प्रेम की याद हो आई..... उसकी आंखों में कजरी ऐसे आकर खड़ी हो गई, जैसे वह साक्षात सामने खड़ी हो.....

'ऐ बुधुआ, मेरा जीजा बीमार है। मुझे उसके गांव तेतरी पहुंचा दो। शाम होती जा रही है। रास्ते में घना जंगल पड़ता है। जब से चरका के बाप ने बाघिन को मार दिया है, बाघ बौराया हुआ है। पता नहीं, इतने सुंदर जानवर की खाल के लिए चरका का बाप क्यों गोली दागते चलता है।'

'चलो, मैं साथ चलूंगा, कजरी..... चरका का बाप बाघ की खाल बेच कर लाखों रुपये

कमाता है, लेकिन मैं कह दे रहा हूं कि चरका एक दिन बाप से दो हाथ आगे बढ़कर आदमी की खाल का भी व्यापार करेगा।'

'मैं अपने मजबूत कंधे पर कुल्हाड़ी रख कर कजरी के साथ तेतरी गांव की ओर चल पड़ा था..... घने जंगल में एक झाड़ी की बगल से निकलते समय बाघ ने मुझ पर अचानक छलांग लगा दी..... मैं जमीन पर गिर पड़ा..... मेरी कुल्हाड़ी छिटक कर दूर जा गिरी..... बाघ मेरी छाती पर सवार था..... उसे मेरी गरदन पर सिर्फ एक झटका लगाना था और मेरी ईह-लीला समाप्त हो जानी थी..... जंगल में मृत्यु बिजली की गति से आती है..... सहज और पीड़ाहीन..... मैंने अपनी आंखें मूंद लीं..... तभी बाघ गर्जन करता हुआ मेरी छाती पर से उछला..... मैंने पलट कर देखा..... कजरी कुल्हाड़ी से बाघ पर लगातार वार कर रही थी..... बाघ के गले पर से रक्त की धारा बह रही थी..... मैं जब तक उठता, बाघ ने कजरी पर हमला किया..... कजरी ने अपनी जान देकर मेरी जान बचा ली थी.....'

'कजरी की लाश उसकी वीरता की गाथा कह रही थी..... मैं शर्म से जमीन में समा जाना चाहता था। मैं चला था, कजरी का रखवाला बन कर और कजरी ने ही मेरे प्राणों की रक्षा की..... मैं कई दिनों तक सो नहीं पाया था.....'

'कई वर्षों बाद मेरी भेंट मंगरी से हुई..... मंगरी में मुझे कजरी की छाया दीखती थी..... मंगरी ने मेरे जीवन में आकर मुझे नई उमंग दी..... मैं पहले मानता था कि आदमी को एक ही बार प्रेम होता है..... लेकिन मंगरी ने अपने सच्चे प्रेम से मेरे मन में भी उसके लिए प्रेम के बीज अंकुरित कर दिए..... अगर मंगरी ने मुझे अपना प्रेम नहीं दिया होता तो मैं जीवन के जंगल में कहीं भटक कर अब तक समाप्त हो चुका होता.....'

'कल सुबह यह गांव छोड़ना ही होगा.. फिर शुरू होगी लंबी उबाऊ बस यात्रा..... सभी मजदूर जानवरों की तरह बस में ठूंस दिए जाएंगे..... सभी के मन, हृदय और प्राण गांव में ही रह जाएंगे और शरीर किसी निर्मम चक्की में पिसने के लिए पहुंच जाएंगे.....'

'दरबेनुमा घर में रहना होगा। दिन भर में दस-पांच बार मालिक के गुर्गे से कड़ुवी बातें सुननी होंगी। गालियां सुननी होंगी—कोई गलती हो या न हो..... दुतिया के साथ भद्दे मजाक

किए जाएंगे..... मेरे सामने ही..... मुझे एक सीमा तक ऐसे अपमान सहने होंगे..... पर किसी ने उसे छूने की कोशिश की तो मैं अपनी कुल्हाड़ी से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा..... मेरी बेटी सिंगदेई की अवतार है..... उसे कौन छुएगा.....'

'मैं मालिकों और मैनेजरों के लिए पूरी मेहनत से काम करूंगा..... लेकिन, चाहूंगा कि मेरी बेटी दुतिया की प्रतिष्ठा बची रहे..... चाहे वे मेरे मन और प्राण पर कितने भी घाव कर लें..... हे सिंगबोंगा! मालिकों और मैनेजरों को कब आदमी बनाएगा?'

आखिर सुबह हो ही गई..... विदा की सुबह..... बुधुआ जल्दी-जल्दी तैयार होने लगा.....

''मंगरी, दुतिया को जल्दी तैयार कर दो..... एक मिनट भी देर होने पर चरका आग बबूला हो उठता है.....''

''बुधुआ, दुतिया तैयार हो रही है..... वह जिद् कर रही थी कि उसके थैले में उसकी माटी की गुड़िया और गुड्डे रख दूं..... बच्ची है, सो मैंने उसके थैले में.....''

''अरी, माटी के खिलौने रास्ते में ही टूट जाएंगे..... थैले में मत डालना.....''

''बुधुआ, दुतिया की उम्र का भी ख्याल करो..... उसका मैं आज मन नहीं तोडूंगी..... पता नहीं, उसके मन पर आज क्या गुजर रही होगी..... मैं तो अब भी कहती हूं कि उसे लेकर मत जाओ.....''

मां की तड़प को सुनकर भी बुधुआ चुप रह गया क्योंकि यह वक्त उसके लिए भावना में बहने का नहीं था..... यह वक्त था—उसके अस्तित्व के लिए संघर्ष का.....

बुधुआ अपने विचारों में फिर से खो जाना चाहता था, लेकिन तभी उसे पश्चिम की ओर से कुछ शोर सुनाई दिया..... वह झोपड़ी से निकल कर बाहर आया..... सड़क के किनारे चरका की लाई बस खड़ी थी..... वहीं पर बहुत भीड़ लगी हुई थी..... वह भागा हुआ वहां पहुंचा..... बैंक, श्रम और पुलिस विभाग के कई अधिकारी वहां मौजूद थे..... चरका के हाथ में हथकड़ी लगी हुई थी.....

''मजदूर भाइयों को चिंता करने की कोई बात नहीं है। यह चरका आप लोगों को गैर-कानूनी रूप से असम ले जा रहा था..... और अब आप लोगों को बाहर जाने की जरूरत ही नहीं है..... हमारे साथ आए हरि किशोर बाबू आप लोगों को कुछ खुशखबरी देंगे.....''

''हां, राम बाबू, मेरे पास इन लोगों के लिए अच्छी खबर है। इस खबर के पीछे भीखू जी का हाथ और उनका संघर्ष है..... आप लोग फिर से खेती शुरू कर सकें, उसके लिए आप लोगों को पर्याप्त ऋण मिल जाएगा। साथ ही आपके प्रखंड में ही आप लोगों को साल भर का काम भी मिलेगा.....''

बुधुआ घोर आश्चर्य में डूबा हुआ था। उसे लग रहा था कि वह सपना देख रहा है। उसके मुंह से बोल नहीं फूट रहे थे..... सारी रात उसके मन और प्राण ने जो दुखद भटकाव झेला था..... जो तनाव अनुभव किया था..... जिन भयावह दृश्यों को उसकी आंखों ने देखा था..... विदा की काली रात का सारा दुख-दर्द उसकी आंखों से झर-झर कर बह रहा था..... एक नया सूरज उग रहा था..... खेतों में परिंदे हर्ष-गीत गा रहे थे..... ❑

(पृष्ठ 21 का शेष) **स्वतंत्रता के पचास वर्ष और सफाईकर्मी वर्ग की स्थिति : एक आकलन**

छुआछूत के कारण इनसे घरों में कार्य न करवा सकने के कारण इनका चयन न कर अन्य अनुसूचित जातियों में से उम्मीदवारों की नियुक्ति करते हैं। इससे आरक्षित स्थान तो भर जाते हैं परंतु जिन्हें ऐसी नौकरी की सर्वाधिक आवश्यकता है, वे वंचित रह जाते हैं।

अत: यह आवश्यक है कि अनुसूचित जाति वर्ग के लिए निर्धारित आरक्षण में से कम-से-कम तीन प्रतिशत स्थान केवल सफाईकर्मियों के लिए ही आरक्षित किए जाने का प्रावधान किया जाए ताकि नौकरियों में वर्षों से इनके प्रति चला आ रहा भेदभाव बंद हो सके।

निष्कर्ष

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा सफाईकर्मियों के उत्थान के लिए यद्यपि करोड़ों रुपये खर्च किए जा चुके हैं परंतु वांछित लक्ष्य अभी भी बहुत दूर हैं। साथ ही यह भी कि लक्ष्य तो अधूरे ही रहे परंतु इस दौरान जितना भी काम हुआ है, वह भी बहुत उत्साहवर्द्धक और टिकाऊ नहीं है क्योंकि आवश्यक बुनियादी प्रबंध कारगर नहीं रहे। योजनाओं को लागू करने में विभिन्न कारणों के चलते वांछित उत्साह का अभाव, सही मशीनरी को विकसित न किया जाना, संबद्ध वर्गों की पर्याप्त भागीदारी सुनिश्चित न होना तथा भ्रष्टाचार और राजनीतिक हस्तक्षेप भी न्यूनाधिक जिम्मेदार रहे। यही नहीं, धन की कमी भी निश्चित रूप से एक बड़ा कारण रही है। परंतु इस तथ्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता कि सफाईकर्मियों के कल्याणार्थ बनाए गए कार्यक्रमों के पीछे जन-कल्याण भावना कम और वोट बैंक बढ़ाने की राजनीति ने अधिक काम किया है। फिर भी, यह कहा जा सकता है कि इन 50 वर्षों में इस वर्ग के उत्थान का मुद्दा हाशिए पर न रहकर मुख्य मुद्दा बन चुका है और इस वर्ग को अब और अधिक भुलावे में नहीं रखा जा सकता।

संदर्भ

1. गेल, ओमवेट, *दलित्स एण्ड द डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन,* सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1994
2. जगन शंकर, *सोशल प्रोब्लेम्स एण्ड वेलफेयर इन इण्डिया,* आशीष पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1992
3. *यंग इण्डियन,* वाल्यूम 8, नं. 2-3 अगस्त 1997, नई दिल्ली।

नई सरकार की नई पहल

केंद्र में मार्च 1998 में बनी नई सरकार ने अपने सौ दिन के अल्पकाल में ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में तेजी लाने के कई महत्वपूर्ण फैसले किए हैं। जवाहर रोजगार योजना को अब ग्राम पंचायतें लागू करेंगी; ट्राइसेम, डवाकरा और गंगा कल्याण योजना का समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम आई.आर.डी.पी. में विलय कर दिया जाएगा और इस कार्यक्रम को स्वयं-सहायता समूहों के माध्यम से लागू किया जाएगा। इस वर्ष के बजट में भी ग्रामीण क्षेत्रों की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में चालू वित्त वर्ष में 13 लाख मकान बनाने के लिए 1,600 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। पिछले वर्ष यह राशि 1,144 करोड़ रुपये थी। सभी ग्रामीण इलाकों में स्वच्छ पेय जल उपलब्ध कराने के महत्वाकांक्षी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बजट में त्वरित जलापूर्ति योजना हेतु 1,627 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। इस वर्ष ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय के बजट प्रावधानों में भी उल्लेखनीय वृद्धि की गई है। प्रस्तुत है इस संबंध में और जानकारी इस संक्षिप्त लेख में।

जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों की पुनर्संरचना

ग्रामीण और रोजगार मंत्रालय ने जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों (डी.आर.डी.ओ.) को पुनर्संरचित करने का फैसला किया है। अब डी.आर.डी.ओ. को उच्च दक्षता के साथ व्यावसायिक संगठन की तरह कार्य करना होगा। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की निरंतरता तथा स्थायित्व को प्रोत्साहित करने के लिए अब मंत्रालय ने फैसला लिया है कि डी.आर.डी.ओ. में पदस्थापित परियोजना अधिकारी या अन्य अधिकारियों का न्यूनतम कार्यकाल दो वर्ष होना चाहिए। पुनर्संरचित डी.आर.डी.ओ. तकनीकी एवं वित्तीय अंकेषण के लिए भी जिम्मेवार होगा। मंत्रालय ने फैसला किया है कि डी.आर.डी.ओ. के लिए एक नया निधिकरण प्रतिमान (फंडिंग पैटर्न) पेश किया जाएगा जिसके तहत इसमें केंद्र एवं राज्यों का हिस्सा 3:1 के अनुपात में होगा। यह फैसला मई 1998 में आयोजित राज्य ग्रामीण विकास मंत्रियों के सम्मेलन में लिया गया।

स्वयं-सहायता समूह पर बल

मंत्रालय ने प्रत्येक जिला प्रशासन को गरीबी निवारण के लिए विस्तृत रणनीति तैयार करने के लिए कहा है। उन्हें कहा गया है कि ये कम-से-कम पांच कार्यक्षेत्रों की पहचान करें जिसमें संसाधनों का समुचित इस्तेमाल हो सके। परंतु इसके लिए उस क्षेत्र के लोगों की व्यावसायिक निपुणता को ध्यान रखना आवश्यक होगा। यह फैसला किया गया है कि अब से समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.) का बल स्वयं-सहायता समूहों पर होगा। स्वयं-सहायता समूहों का गठन ऐसे ढंग से करना होगा कि ये समूह प्रभावी रूप से कार्य कर सकें। प्रत्येक स्वयं-सहायता समूह में बड़े पैमाने पर महिलाओं को शामिल करना होगा। समूहों के कार्यकलापों के आधार पर ही आई.आर.डी.पी. के निधिकरण प्रतिमान (फंडिंग पैटर्न) निश्चित किए जाएंगे।

स्वरोजगार कार्यक्रमों का विलय

ग्रामीण गरीबों की पारिवारिक आमदनी को बेहतर करने के निश्चित उद्देश्य से मंत्रालय ने स्वरोजगार कार्यक्रमों को पुनर्संरचित करने का प्रस्ताव किया है। अभी चल रहे कार्यक्रमों—ग्रामीण युवा स्वरोजगार एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम (ट्राइसेम), ग्रामीण क्षेत्र महिला व बाल विकास कार्यक्रम (डवाकरा) और गंगा कल्याण योजना (जी.के.वाई.) का आई.आर.डी.पी. के साथ विलय कर दिया जाएगा ताकि स्थानीय जरूरतों एवं संसाधनों के बीच तालमेल करके विकास को गति दी जा सके।

जवाहर रोजगार योजना के लिए धन ग्राम पंचायतों को

- मंत्रालय ने फैसला किया है कि जवाहर रोजगार योजना को ग्राम पंचायत स्तर पर लागू किया जाएगा। अतएव, अब जिला एवं मध्यवर्ती पंचायत के स्तर पर इस योजना के लिए कोई धन मुहैया नहीं कराया जाएगा। कार्यक्रम पहले की ही भांति गरीबी निवारण के कार्यों में लगा रहेगा। इसमें श्रम प्रधान कार्यों पर बल दिया जाएगा। अत: यह फैसला किया गया है कि ग्राम पंचायतें अब से आबंटित धन के 125 फीसदी के समान वार्षिक कार्ययोजना को बनाना शुरू कर दें। ग्राम पंचायतों की आम सभा वार्षिक कार्य-योजनाओं पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगाएगी।
- जवाहर रोजगार योजना के तहत मिलने वाली मजदूरी के लिए मंत्रालय ने राज्य या जिला प्राधिकारियों द्वारा मंजूर मजदूरी (इनमें से जो भी अधिकतम हो) को मानने का प्रस्ताव किया है।
- जम्मू-कश्मीर राज्य में सीमित कार्यकारी दिवसों के कारण वहां मदद पहले की तरह जारी रहेगी।

ग्रामीण विकास के आबंटन में वृद्धि

ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय के लिए केंद्रीय आयोजना परिव्यय को 1997-98 के 9,096 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 1998-99 में 9,912 करोड़ रुपये कर दिया गया है। ग्रामीण विकास के लिए 2,530 करोड़ रुपये, ग्रामीण रोजगार तथा निर्धनता उन्मूलन के लिए 7,281 करोड़ रुपये और बंजरभूमि विकास के लिए 101 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। ❑

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

आजादी के पचास वर्ष और ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षिक विकास

डा. अनिरुद्ध शरण मिश्र एवं डा. पी.एल. सरोज

"शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य का सर्वांगीण विकास (मानसिक, शारीरिक, सामाजिक एवं भावात्मक) होता है।" शिक्षा मनुष्य में आवश्यक गुणों का विकास करती है। शिक्षा की प्रवृत्ति सदैव कल्याणकारी होती है। यदि किसी ने कोई ऐसा ज्ञान अर्जित किया, जो जीवन के लिए विनाशक प्रवृत्ति का है, तो उसे शिक्षा की श्रेणी में नहीं रखा जाता। शिक्षा से तात्पर्य किसी स्तर की डिग्री या डिप्लोमा से नहीं है, न ही शिक्षा को किसी उम्र तक सीमित किया जा सकता है। अपितु यह एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है जिससे मनुष्य के अंदर छिपे हुए गुणों का विकास होता है। किसी लिपि को, किसी स्तर तक लिखना-पढ़ना 'साक्षरता' कहलाता है। साक्षरता न तो शिक्षा का अंत है न ही प्रारंभ, यह तो एक साधन है जिसके द्वारा मनुष्य को शिक्षित किया जा सकता है। साक्षरता स्वयं शिक्षा नहीं है। शिक्षा का कोई लिखित मापदंड नहीं है। शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन और जीवकोपार्जन ही नहीं अपितु मानसिक, चारित्रिक, सांस्कृतिक, शारीरिक, सामाजिक, वैयक्तिक और जीवन को पूर्णता प्रदान करना है।

साक्षरता शिक्षा से भिन्न किंतु ये दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं। साक्षर व्यक्ति अपने अनुभवों को लिपिबद्ध कर सकता है, दूसरे के लिपिबद्ध अनुभवों को स्वहित में अंगीकार कर सकता है और जनहित में उसका प्रचार-प्रसार कर सकता है। अत: साक्षरता आम आदमियों के विकास का सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। यह मनुष्य के बंद पड़े ज्ञान-मार्ग को प्रशस्त करती हुई विवेकपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करती है।

*केन्द्रीय भूमि एवं जल संरक्षण अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, देहरादून (उ.प्र.)

शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अत्यंत गौरवशाली है। प्राचीन काल में जब संसाधनों की कमी थी, तब भी वृक्षों की छाल (भोजपत्र), पत्तों एवं लकड़ी की तख्तियों पर कालिख से लिखना सिखाया जाता था जो आज के कम्प्यूटर युग में दिवा-स्वप्न जैसा लगता है। भारतीय संस्कृति की पराकाष्ठा की पृष्ठभूमि में निहित विविध विशेषताओं के अंतर्गत भारतीयों की आध्यात्मिकता के प्रति मोह एक प्रमुख विशेषता रही है। इस गौरवमय आदर्श का प्रभाव भारत की समस्त व्यवस्थाओं पर व्यापक रूप से पड़ता रहा है। भारतीयों ने अति प्राचीन काल से ही इस आदर्श को अपनी जीवन-शैली का अभिन्न अंग बनाया। इसी विशेषता के कारण विश्व में भारत प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में विश्व गुरु के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है। भारत में पाषाण काल से लेकर आज तक शिक्षा को संस्कार के रूप में माना जाता रहा है। इसी आदर्श पर शिक्षार्थियों को शिक्षित, प्रशिक्षित अथवा दीक्षित किया जाता था। वैदिक काल में भी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिकता का विकास करना, छात्रों की चित्तवृत्तियों का निरोध, ज्ञान एवं अनुभव का समन्वय, सामाजिकता की भावना का विकास, चरित्र का विकास, व्यक्तित्व का विकास, व्यावसायिक कुशलता का विकास तथा भारतीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रचार था। इसी तरह यदि

बौद्ध कालीन शिक्षा पर दृष्टिपात करें, जो आध्यत्मिकता से प्रभावित थी तो ज्ञात होता है कि बौद्ध कालीन शिक्षा का उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति, बौद्ध धर्म का प्रचार, चरित्र-निर्माण, व्यक्तित्व का विकास तथा भावी जीवन के लिए छात्रों को तैयार करना था जबकि मुस्लिम काल में धार्मिकता पर विशेष बल दिया गया। भारत में प्राचीन काल की शिक्षा गुरु-शिष्य परंपरा पर आधारित थी जो राजाओं-महाराजाओं, ब्राह्मणों और विशिष्ठ व्यक्तियों तक ही सीमित थी। जातिगत भावनाओं का प्रबल प्रभाव था। संसाधनों का अभाव था। अत: शिक्षा आम आदमी का कार्यक्रम न होकर कुछ विशेष स्तर तक ही सीमित थी।

वर्तमान शिक्षा का क्रमिक विकास ब्रिटिश काल से प्रारंभ हुआ। सन् 1765 में अंग्रेजों ने सर्वप्रथम भारत की शिक्षा नीति का निर्धारण किया। स्थान-स्थान पर अनेक प्राथमिक पाठशालाओं की स्थापना की। सन् 1781 में वारेन हेस्टिंग्स ने कलकत्ता में मदरसों की स्थापना की। हिन्दू नवयुवकों के लिए बनारस में एक संस्कृत कालेज की स्थापना की। 1818 में अलिफ्रस्ट्रन द्वारा पूना संस्कृत कालेज की स्थापना ब्रिटिश काल की ही देन है। ब्रिटिश काल के प्रथम चरण में शिक्षा (1854-1900) को नवीन दिशा प्राप्त हुई, जिसमें 1813 का आज्ञा-पत्र जिसमें भारतीय शिक्षा को एक नवीन रूप प्रदान करने की योजना बनाई गई थी, विशेष महत्व रखता है। 7 मार्च 1853 को लार्ड मैकाले का विवरण-पत्र घोषित हुआ जिसमें शिक्षा को सार्वजनिक रूप में घोषित किया गया।

स्वतंत्र भारत में शिक्षा

स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरांत भारत में शिक्षा के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई। शिक्षा के विकास के लिए विभिन्न आयोगों की स्थापना तथा नीतियों की घोषणा की गई। शिक्षा विकास के कार्यक्रम को विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में प्रमुखता से कार्यान्वित किया गया, जो इस प्रकार है :

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) : इस योजना के अंतर्गत 6 से 11 वर्ष की आयु के 60 प्रतिशत बालक अथवा बालिकाओं के लिए और माध्यमिक स्तर पर शिक्षार्थियों की संख्या के अनुसार यह अनुपात बालकों के लिए 18 और बालिकाओं के लिए 12 प्रतिशत तक रखने का निर्णय लिया गया। इसके अतिरिक्त 12 से 40 वर्ष की आयु के प्रौढ़ों को सामाजिक शिक्षा प्रदान करने की घोषणा की गई। इसके साथ ही शिक्षकों के वेतन क्रम तथा प्रशिक्षण में सुधार, व्यावसायिक शिक्षा के विकास, नारी शिक्षा की प्रगति तथा विश्वविद्यालयों के विकास के बारे में भी निर्णय लिया गया। यद्यपि व्यावहारिक दृष्टि से इस योजना के सुझावों का पूर्ण क्रियान्वयन नहीं हो सका, फिर भी प्रारंभिक शिक्षा के विकास में योगदान अवश्य रहा।

दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956-61) : इस योजना में प्रथम पंचवर्षीय योजना के दोषों को दूर करने और निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया गया। इस योजना में जो लक्ष्य निर्धारित किए गए, उनमें प्राथमिक शिक्षा के साथ-साथ बुनियादी शिक्षा के लिए प्रसार करना, बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना करना, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की स्थिति में सुधार करके उन्हें प्रगति की दिशा में अग्रसारित करना और सांस्कृतिक दृष्टि से विभिन्न भाषाओं, साहित्य, ललित कलाओं आदि का विकास शामिल थे।

तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-66) : इस योजना के माध्यम से शिक्षा को राष्ट्रीय जीवन का अंग बनाने का प्रयास किया गया तथा शिक्षा के माध्यम से ही राष्ट्र की प्रगति करने का प्रयास किया गया। इस योजना के लक्ष्यों के अंतर्गत 7-11 वर्ष के बालक अथवा बालिकाओं को शिक्षा प्रदान करना, प्राथमिक स्तर पर संक्षिप्त पाठ्यक्रम की व्यवस्था करना, विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रमों की समुचित व्यवस्था करना तथा सामाजिक शिक्षा पर बल देना आदि सम्मिलित थे।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) : तृतीय पंचवर्षीय योजना की व्यावहारिक सफलता के बाद चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में भी शिक्षा की प्रगति हेतु अनेक लक्ष्य निर्धारित किए गए, जिनमें प्रमुख थे—प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाना, शिक्षितों की बेरोजगारी दूर करना, सामाजिक-शिक्षा का निर्माण करना, हस्तशिल्पों संबंधी संस्थाओं की स्थापना, माध्यमिक स्तर पर विज्ञान को प्रोत्साहित करना तथा प्राथमिक स्तर पर पढ़ने वाले बालकों की संख्या में वृद्धि करना।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-79) : इस योजना के लक्ष्य थे— 6-11 वर्ष की आयु के बालक अथवा बालिकाओं की शिक्षा के लिए 1976 तक अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करना, माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा पर बल देना, हस्तकला को महत्व देना, 10+2+3 पद्धति का शैक्षिक व्यवस्था में प्रयोग करना, आदर्श विद्यालयों की स्थापना करना, राष्ट्रीय छात्रवृत्ति के विकास को प्रोत्साहित करना आदि। इस योजना के अंतर्गत विश्वविद्यालयों की संख्या में 105 तक की वृद्धि हुई तथा महाविद्यालयों की संख्या 4610 हो गई।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) : इस योजना के लक्ष्य थे—प्राथमिक स्तर की शिक्षा में 6-14 वर्ष की आयु के 90 प्रतिशत तथा 11-14 वर्ष की आयु के 59 प्रतिशत बालक/बालिकाओं के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था करना, देश के प्रति 3 कि.मी. की दूरी पर माध्यमिक एवं 1 कि.मी. की दूरी पर प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना करना, प्रौढ़ शिक्षा का राष्ट्रीय स्तर पर प्रसार करना, माध्यमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाना, शारीरिक शिक्षा पर बल देना, शिक्षित व्यक्तियों की बेरोजगारी दूर करना, त्रिभाषीय सूत्र को लागू करना तथा व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा में सुधार लाना आदि।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) : इस पंचवर्षीय योजना के प्रमुख लक्ष्यों में पाठ्यक्रमों में लिंग भेद मिटाने का प्रयास एवं बालिकाओं की नि:शुल्क शिक्षा के लिए निर्णय लिए गए। इस योजना से पूर्व बालिकाओं का साक्षरता प्रतिशत बहुत कम रहा था और जिन बालिकाओं ने प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश लिया भी था वे भी उच्च कक्षाओं में प्रविष्ठ नहीं हुई थीं किंतु इस दौरान बालिकाओं के पंजीकरण में काफी बढ़ोतरी हुई है। जहां 1950-51 में बालिकाओं का प्राथमिक विद्यालयों में पंजीकरण 28.1 प्रतिशत था, वहीं 1993-94 में यह 42.9 प्रतिशत हो गया। नवोदय विद्यालयों की स्थापना इस योजना की प्रमुख देन है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) : पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों के अतिरिक्त आठवीं पंचवर्षीय योजना में महिलाओं की सहभागिता पर

विशेष बल दिया गया। प्राथमिक विद्यालयों की दशा में सुधार, प्रौढ़ शिक्षा पर बल, उच्च शिक्षा को वरीयता, नवोदय विद्यालयों का विकास, ग्रामीण शिक्षा पर बल, अनुसूचित जाति और जनजाति के बालक अथवा बालिकाओं के लिए विशेष शिक्षण व्यवस्था, नये विश्वविद्यालयों की स्थापना आदि के क्षेत्र में विशेष प्रयास किए गए। इस योजना में नवीन शिक्षा नीति भी घोषित हुई।

साक्षरता विकास

स्वतंत्र भारत में शिक्षा के क्षेत्र में समय-समय पर विभिन्न स्तरों पर प्रयास किए जाते रहे हैं, जिनमें मुदालियर आयोग के सुधार, राधाकृष्णन की अध्यक्षता में आयोग, आचार्य नरेन्द्र देव कमेटी और कोठारी आयोग के सुधार प्रमुख हैं। 1995-96 में भारत में 5,90,421 प्राथमिक विद्यालय, 1,71,216 उच्च प्राथमिक विद्यालय, 98,134 हाई स्कूल अथवा इंटर मीडिएट कालेज, 6,569 सामान्य शिक्षा के विद्यालय, 1,354 व्यावसायिक शिक्षा के कालेज तथा 231 विश्वविद्यालय थे जिसमें 29 कृषि विश्वविद्यालय थे। इसके अतिरिक्त 30 प्रदेशों/केन्द्र शासित राज्यों में 378 नवोदय विद्यालय थे।

यदि आजादी के पचास वर्षों के बाद साक्षरता के विकास की गति को देखा जाए तो 1951 में देश में कुल साक्षरों की संख्या 60.9 लाख थी जो 1981 में 347.55 लाख हो गई। इससे स्पष्ट है कि 30 वर्षों बाद ही साक्षरता में पांच गुनी वृद्धि हुई। यहां यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि जैसे-जैसे साक्षरता प्रतिशत में बढ़ोतरी हो रही है, वैसे-वैसे निरक्षरों की संख्या में भी वृद्धि हो रही है जिसका मूल कारण है—जनसंख्या में तेजी से वृद्धि। सन् 1951 में देश में 18.33 प्रतिशत साक्षरता 1990-91 में बढ़कर 52.2 प्रतिशत हो गई। पुरुष एवं महिलाओं में साक्षरता विकास की दर नीचे की तालिका में दी गई है :

तालिका
भारत में साक्षरता प्रतिशत

वर्ष	पुरुष	महिला	कुल
1950-51	24.95	7.93	18.33
1960-61	34.45	12.95	24.02
1970-71	39.44	18.69	29.45
1980-81	46.74	27.88	43.56
1990-91	64.10	39.30	52.20

शिक्षा के विभिन्न आयाम तथा ग्रामीण विकास

इस कटु सत्य को कि बिना शिक्षा के ग्रामीण विकास संभव नहीं है, ध्यान में रखकर साक्षरता के विभिन्न अभियान चलाए गए। इन सघन कार्यक्रमों के फलस्वरूप आज साक्षरता का स्तर ग्रामीण क्षेत्रों में 44.5 प्रतिशत हो गया है। ग्रामीण क्षेत्र के पुरुषों में साक्षरता 57.8 प्रतिशत तथा महिलाओं में 30.3 प्रतिशत है जबकि शहरी क्षेत्रों में कुल 73.1 प्रतिशत जिसमें पुरुषों की साक्षरता 81.0 प्रतिशत तथा महिलाओं की 63.9 प्रतिशत है (1991)। आज देश की 95 प्रतिशत ग्रामीण जनता के लिए 3 कि.मी. की परिधि में कोई न कोई प्राथमिक विद्यालय अवश्य है। कुछ विशेष साक्षरता कार्यक्रम जिनका ग्रामीण विकास से सीधा संबंध है, इस प्रकार हैं :

बुनियादी शिक्षा : सन् 1947 में हिन्दुस्तानी तालीम संघ ने प्राथमिक शिक्षा के विस्तृत पाठ्यक्रम के आधार पर ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में साक्षरता को बढ़ाने का प्रयास किया। बुनियादी शिक्षा पर महात्मा गांधी के दर्शन का विशेष प्रभाव रहा। इसे वर्धा योजना के नाम से भी जाना जाता है। इस योजना की रूपरेखा में पाठ्यक्रम की अवधि 7 वर्ष की होनी चाहिए, शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए, अंग्रेजी भाषा का पाठ्यक्रम में कोई स्थान नहीं, 7-14 वर्ष के बालक/बालिकाओं के लिए निःशुल्क शिक्षा, हस्तशिल्प कला पर बल, निर्मित वस्तुओं को बेचकर धन अर्जित करना, संपूर्ण शिक्षा का संबंध किसी आधारभूत शिल्पकला से, शिल्प का चयन बालक की योग्यता एवं रुचि के आधार पर तथा शारीरिक श्रम पर भी ध्यान देना शामिल था। यद्यपि बुनियादी शिक्षा ग्रामीण वातावरण की दृष्टि से बहुत उपयुक्त थी किन्तु आधुनिक मशीनरी युग में यह शिक्षा व्यावहारिक नहीं हो सकी।

प्रारंभिक शिक्षा : प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत झुग्गी-झोपड़ी में रहने वाले गरीब बच्चे, ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने वाले गरीब बच्चे, असंगठित क्षेत्रों में कार्य करने वाले बाल श्रमिक, भूमिहीन खेतिहर मजदूरों के बच्चे, बंजारा, आदिवासी, ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में कार्यरत मजदूरों के बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा देने का प्रावधान किया गया। नई शिक्षा नीति के अंतर्गत प्रारंभिक शिक्षा के महत्व को स्वीकारा गया। सन् 1986 में घोषित नई शिक्षा नीति के लक्ष्य के अनुसार यह व्यवस्था बनाई गई कि प्रति 300 लोगों की आबादी वाले क्षेत्र में एक स्कूल तथा आदिवासी, मरुस्थलीय एवं पहाड़ी क्षेत्रों में प्रति 200 लोगों की आबादी के बीच एक स्कूल बनाया जाए। केन्द्र सरकार ने सभी राज्यों में यह लक्ष्य 1990 तक पूरा करने का निर्देश दिया। आजादी के बाद चौथे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार 1978-79 में देश की 92.82 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या को 1 कि.मी. की परिधि में शिक्षा उपलब्ध थी। वर्तमान समय में प्रारंभिक शिक्षा दुनिया का सबसे बड़ा कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत सन् 1995-96 में 6-14 वर्ष के बीच 10.57 करोड़ बच्चे पंजीकृत हुए। समन्वित रूप में प्राथमिक शिक्षा के विकेन्द्रीकरण के लिए जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम शुरू किया गया। इस कार्यक्रम में समुदाय में जागरूकता, प्रबंधन में सहभागिता, कार्य-कुशलता में वृद्धि के साथ-साथ सामूहिक उत्थान पर बल दिया गया।

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन : देश में शिक्षा विकास एवं निरक्षरता उन्मूलन के लिए 'राष्ट्रीय साक्षरता मिशन' नामक विशाल जन अभियान का श्रीगणेश तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी द्वारा 5 मई 1988 को विज्ञान भवन में किया गया। इस मिशन का लक्ष्य देश में 1988-90 तक 15-35 वर्ष आयु वर्ग के 3 करोड़ प्रौढ़ अशिक्षितों को तथा 1991-95 तक इसी आयु वर्ग के 5 करोड़ प्रौढ़ अशिक्षितों को कार्यात्मक साक्षरता प्रदान करना था। साथ ही वर्तमान प्रौढ़ शिक्षा में गुणात्मक सुधार भी लाना है। इस मिशन

का संचालन प्रौद्योगिकी संस्थानों, विश्वविद्यालयों, अनुसंधान संस्थानों, ट्रेड यूनियनों, नेहरू युवा केन्द्रों, एन.सी.सी., राष्ट्रीय सेवा योजना, भारत स्काउट गाइड तथा स्वयंसेवी संगठनों के सहयोग से होना निश्चित किया गया। राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा प्राधिकरण बनाए जाने का भी प्रावधान किया गया। 5000 की आबादी पर गांवों को मिलाकर पुस्तकालय, अध्ययन कक्ष, विचार-विमर्श और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के संचालन के लिए मंच की व्यवस्था का भी निर्णय किया गया।

आपरेशन ब्लैक बोर्ड : ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के त्वरित विकास के लिए 'आपरेशन ब्लैक बोर्ड' नामक अभियान चलाया गया। इस योजना के अंतर्गत न्यूनतम अनिवार्य भौतिक आवश्यकताओं की व्यवस्था से साक्षरता का विस्तार करना था। इस योजना के अंतर्गत दो अध्यापक, दो कमरों का एक भवन, ब्लैक बोर्ड, मानचित्र, आवश्यक खिलौने तथा अन्य पाठ्यक्रम सामग्री उपलब्ध कराने का भी प्रावधान है। यह अभियान ग्रामीण वातावरण में साक्षरता के विस्तार हेतु बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहा है। यह प्राथमिक शिक्षा सुधार कार्यक्रम की एक राष्ट्रव्यापी योजना है।

नवोदय विद्यालय : नई शिक्षा नीति के अंतर्गत 1986-87 में नवोदय विद्यालय का कार्यक्रम शुरू किया गया। इन विद्यालयों की संकल्पना के पीछे मूल भावना देश के ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग के प्रतिभाशाली छात्रों को उच्चकोटि की शिक्षा प्रदान करना है। वर्तमान समय में देश के विभिन्न प्रदेशों तथा संघीय राज्यों में 378 नवोदय विद्यालय हैं। इन विद्यालयों की स्थापना से ग्रामीण क्षेत्र के प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को नि:शुल्क शिक्षा का प्रावधान रखा गया है। इन विद्यालयों में ग्रामीण क्षेत्र के बच्चों के लिए 75 प्रतिशत आरक्षण तथा अनुसूचित जाति एवं जनजाति के विद्यार्थियों के लिए राष्ट्रीय स्तर का आरक्षण 15 प्रतिशत तथा 7 प्रतिशत रखा गया। इन विद्यालयों में बालिकाओं की संख्या एक-तिहाई बनी रहे, इसका भी प्रयास किया गया और सहशिक्षा पद्धति का सिद्धांत अपनाया गया। इन विद्यालयों में भोजन, ड्रेस, पुस्तक एवं आवासीय सुविधाओं को नि:शुल्क रखा गया है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों के मेधावी बालकों और बालिकाओं को प्रगति के लिए उचित अवसर मिल सकें।

व्यावसायिक शिक्षा : छात्रों को शिक्षा के उपरांत आत्मनिर्भर बनाने तथा शिक्षा के दौरान कुछ धन अर्जित करने के उद्देश्य से व्यावसायिक शिक्षा का शुभारंभ किया गया। इस विशिष्ट योजना के अंतर्गत केन्द्र सरकार राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में व्यावसायिक शिक्षा को माध्यमिक स्तर पर शुरू करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती है। केन्द्र सरकार की योजना के अनुसार 1990 तक कुल 5,000 माध्यमिक विद्यालयों में व्यावसायिक पाठ्यक्रम शुरू करने की योजना बनाई गई थी। केन्द्र ने राष्ट्रीय स्तर पर एक व्यावसायिक शिक्षा की संयुक्त परिषद के गठन की भी योजना बनाई थी। यह परिषद व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की योजना के क्षेत्र में नीति-निर्देशन, नियोजन तथा विभिन्न संस्थाओं द्वारा संचालित कार्यक्रमों के मध्य समन्वय स्थापित करने का कार्य करेगी।

नौकरियों में डिग्री की अनिवार्यता नहीं : नौकरियों में डिग्री की अनिवार्यता को समाप्त करने के पीछे भी यही उद्देश्य था कि कुछ प्रतिभाशाली व्यक्तियों को सरकारी नौकरी केवल इसलिए नहीं मिल सकती क्योंकि

सदस्यता कूपन

मैं/हम कुरुक्षेत्र का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/चाहते हैं।

शुल्क : एक वर्ष के लिए 50 रुपये का
दो वर्ष के लिए 95 रुपये का
तीन वर्ष के लिए 135 रुपये का

(जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक ..... दिनांक ..... संलग्न है।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) .....

पता .....

.....

पिन .....

इस कूपन को काटिए और इस पृष्ठ की पिछली ओर बने बाक्स के नं. 3 में दिए गए पते पर भेजिए।

उनके पास डिग्री नहीं है। इस योजना से ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के उन प्रत्याशियों को विशेष न्याय मिल सकेगा जिनके पास कोई विशेष कार्य करने की क्षमता है, लेकिन किसी संस्थान द्वारा प्रदत्त उपाधि नहीं है। इस योजना के अंतर्गत एक राष्ट्रीय परीक्षण सेवा प्रारंभ करने का प्रावधान किया गया है जिसके आधार पर डिग्री की अनिवार्यता रहित विशिष्ट कार्यों के लिए प्रत्याशियों की उपयुक्तता की जांच की जाएगी। विभिन्न कारणों से इस दिशा में अभी तक विशेष प्रगति नहीं हो सकी है। फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों के प्रतिभावान लोगों के लिए यह एक विशिष्ट प्रस्ताव है।

भारत में नारी शिक्षा : भारत की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। देश की कुल आबादी की आधी जनसंख्या महिलाओं की है। यदि राष्ट्र की संपूर्ण प्रगति को ध्यान में रखकर सोचा जाए तो बालकों की अपेक्षा बालिकाओं की शिक्षा ज्यादा महत्वपूर्ण है। पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में 'एक बालक की शिक्षा का अर्थ एक व्यक्ति की शिक्षा, किन्तु एक बालिका की शिक्षा का अर्थ पूरे परिवार की शिक्षा होता है।' फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं में साक्षरता केवल 30.3 प्रतिशत है। आजादी के पश्चात महिला साक्षरता के लिए बराबर प्रयास होते रहे हैं। इसी क्रम में 1958 में राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति, 1964 में राष्ट्रीय शिक्षा परिषद, कोठारी आयोग के सुझाव, 1970 में स्त्री शिक्षा समिति, 1975 में अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के संकल्प तथा 1986 में नवीन शिक्षा नीति में नारी शिक्षा के विकास के लिए अनेक सुझाव दिए गए। 1993-94 में प्राथमिक स्तर पर 42.9 प्रतिशत बालिकाएं पंजीकृत थीं जबकि 1950-51 में केवल 28.1 प्रतिशत पंजीकृत थीं। इसी प्रकार प्राथमिक स्तर पर (कक्षा 1-5) पर 1980-81 में 62.5 प्रतिशत लड़कियां विद्यालय छोड़ देती थीं, जबकि 1993-94 में केवल 39 प्रतिशत बालिकाएं स्कूल छोड़ती थीं। अत: निश्चित तौर पर महिलाओं की शिक्षा में धीरे-धीरे सुधार हो रहा है।

नवीन शिक्षा नीति : प्रत्येक देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति उस देश की शासन व्यवस्था तथा शासक दल की विचारधारा पर निर्भर करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रभाव देश के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पक्षों पर पड़ता है। स्वतंत्र भारत में सर्वप्रथम 1968 में, उसके बाद 1979 में और फिर 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्धारण किया गया। नवीन शिक्षा नीति की विशेषताओं में आदर्श विद्यालयों की स्थापना, शिक्षकों की दशा में सुधार, प्रौढ़ शिक्षा में सुधार, तकनीकी शिक्षा का विकास, प्राथमिक, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालयी शिक्षा पर बल, क्षमता एवं योग्यता के आधार पर नियुक्तियां, पिछड़े वर्गों के लिए शिक्षा, खुला विश्वविद्यालय आदि शामिल हैं।

इस प्रकार आजादी के 50 वर्षों बाद साक्षरता और शिक्षा में निश्चित तौर पर प्रगति हुई है। ग्रामीण शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। फिर भी, अभी क्रमबद्ध प्रयास जारी रखने की आवश्यकता है जिससे भारत का एक भी नागरिक अशिक्षित न रह जाए। चूंकि भारत गांवों का देश है अत: ग्रामीण विकास तभी संभव है जब गांव में रहने वाले संपूर्ण परिवार शिक्षित हों। ❑

1. हम दिल्ली से *योजना* **अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और उड़िया में**
   कुरुक्षेत्र **हिन्दी और अंग्रेजी में**
   आजकल **हिन्दी और उर्दू में**
   और *बाल भारती* **हिन्दी में** प्रकाशित करते हैं।
2. डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर निदेशक प्रकाशन विभाग को नई दिल्ली में देय होना चाहिए।
3. कूपन विज्ञापन और प्रसार संख्या प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक 4, लेवल-7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110066 के पते पर भेजिए।
4. सदस्य बनने के लिए आप हमारे निम्नलिखित केन्द्रों पर भी सम्पर्क कर सकते हैं :

   प्रकाशन विभाग : पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली-110001; सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001; कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई-400038; 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069; राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई-600090; बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004; निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, तिरुअनंतपुरम-695001; 27/6, राम मोहन राय मार्ग, लखनऊ-226019; राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500004; प्रथम तल, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरा मंडल, बंगलौर-560034; सम्पादक, पेयोभरा, नौझम रोड, उजान बाजार, गुवाहाटी-1; सम्पादक, योजना (गुजराती), राम निवास, पालदी बस स्टाप के पास, सरखेज रोड, अहमदाबाद

   पत्र सूचना कार्यालय : सी.जी.ओ. काम्पलैक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर (म.प्र.); 80, मालवीय नगर, भोपाल-462003; के-21, नंद निकेतन, मालवीय मार्ग, 'सी' स्कीम, जयपुर-302003
5. शुल्क प्राप्त होने के बाद नियमित रूप से पत्रिका के अंक मिलने शुरू होने में आठ से दस सप्ताह का समय लगता है।

ग्रामीण आवास : समस्याएं और समाधान

डा. कमलेश रानी

आदि काल से मनुष्य ने सिर पर छत की तलाश की। सभ्यता के विकास के साथ उसने पेड़ों के साये और गुफाओं में रहने के स्थान का निर्माण किया। मनुष्य को भोजन और वस्त्र के बाद मकान की सबसे ज्यादा जरूरत होती है। वह अपने घर में असीम संतुष्टि अनुभव करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने छोटे से घर का सपना संजोता है। किंतु जीवन की जटिल परिस्थितियों में सबका यह सपना पूरा नहीं हो पाता। तेजी से बढ़ती जनसंख्या, बिखरते हुए संयुक्त परिवार तथा बढ़ती हुई महंगाई ने आवास की समस्या को अधिक विकराल बना दिया है। मध्यम और निम्न वर्ग के व्यक्ति दयनीय दशाओं में फुटपाथों, झुग्गियों और किराये के मकानों में रहने के लिए विवश हैं।

जनगणना के आंकड़े इस बात के साक्षी हैं कि जनसंख्या वृद्धि की दर मकान बनाने की दर से अधिक तीव्र रही है। वर्ष 1981-91 के दशक में जनसंख्या वृद्धि की दर 23.5 प्रतिशत थी जबकि इस अवधि में मकान वृद्धि की दर 18.5 प्रतिशत थी। इस विषमता के कारण राष्ट्रीय भवन निर्माण संगठन के अनुमान के अनुसार 1991 में देश में लगभग 3 करोड़ दस लाख मकानों की कमी थी—दो करोड़ छह लाख मकानों की कमी ग्रामीण क्षेत्रों में तथा एक करोड़ चार लाख मकानों की कमी शहरी क्षेत्रों में थी। जनसंख्या वृद्धि की विस्फोटक स्थिति को देखते हुए वर्ष 2001 तक चार करोड़ दस लाख मकानों की कमी हो जाएगी जिसमें से दो करोड़ 55 लाख मकानों की कमी ग्रामीण क्षेत्रों में होगी तथा एक करोड़ 55 लाख मकान शहरी क्षेत्र में कम होंगे।

आर्थिक प्रगति और सामाजिक न्याय हेतु सब नागरिकों के लिए समुचित आवास जरूरी है। हमारे देश के ग्रामीण क्षेत्रों में आवास की समस्या दयनीय है। ग्रामीण मकानों में से दो तिहाई तथा देश के कुल मकानों में से लगभग एक तिहाई मकान कच्चे हैं जो मिट्टी, बांस, घास-फूस इत्यादि से बने हैं। इन मकानों का जीवन बहुत कम होता है। वर्षा के बाद अक्सर इनके पुन: निर्माण की आवश्यकता होती है।

वर्ष 1991 व 2001 में परिवारों और आवासों की स्थिति

(करोड़ में)

विवरण	1991			2001		
	ग्रामीण	शहरी	योग	ग्रामीण	शहरी	योग
1. परिवार	11.35	4.71	16.06	13.70	7.22	20.92
2. उपयोगी आवास	9.29	3.67	12.96	11.15	5.67	16.82
3. आवासीय कमी	2.06	1.04	3.10	2.55	1.55	4.10

स्रोत : राष्ट्रीय भवन निर्माण संगठन

गांवों में स्वच्छता, जल आपूर्ति, गंदे पानी और कूड़े-करकट की निकासी जैसी बुनियादी सुविधाओं की कमी है। इस कारण जल, वायु और मृदा प्रदूषण में वृद्धि होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार गांवों में लगभग 80 प्रतिशत बीमारियां मुख्य रूप से पर्यावरणीय स्वच्छता की समस्या के कारण उत्पन्न होती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे आवासों के कारण यह समस्या और भी जटिल दिखाई देती है। 1991 की जनगणना के अनुसार कुल 11 करोड़ 20 लाख ग्रामीण परिवारों के लगभग 40.82 प्रतिशत के पास एक कमरे वाले, 30.65 प्रतिशत के पास दो कमरे वाले तथा 13.51 प्रतिशत के पास तीन कमरे वाले आवास थे। छत वाले आवासों की तुलना में घास, पुआल और छप्पर वाले आवासों का प्रतिशत 33, मिट्टी और कच्ची ईंटों वाले आवासों का प्रतिशत 6.05 तथा टेंट वाले आवासों का प्रतिशत 4.22 है। ग्रामीण क्षेत्रों में श्रमिकों और कृषकों को आवास की इस दयनीय स्थिति के कारण ग्रामीणों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

आवास के अनुसार परिवारों का प्रतिशत

आवास का प्रकार	ग्रामीण	शहरी
कोई आवास नहीं	0.0	0.1
स्वतंत्र मकान	82.6	52.4
फ्लैट	2.7	17.1
झुग्गी झोपड़ी	3.0	10.8
अन्य	11.7	19.8

स्रोत : राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन, 1992 का सर्वेक्षण तथा राष्ट्रीय आवास बैंक

राष्ट्रीय आवास नीति

देश में विद्यमान आवास समस्या को दूर करने के लिए समय-समय पर अनेक प्रयास किए गए किंतु इन प्रयासों में समन्वय का अभाव बना रहा। इसलिए सरकार ने एक राष्ट्रीय आवास नीति तैयार की। इस नीति को 1994 में संसद की स्वीकृति प्राप्त हुई। इस नीति में सरकार की भूमिका आवास-निर्माता के स्थान पर सुविधा प्रदाता के रूप में निर्धारित की गई लेकिन सरकार दुर्बल वर्गों की आवासीय आवश्यकताओं पर बराबर ध्यान देती रहेगी तथा इसके लिए प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करेगी। नई सरकार ने प्रतिवर्ष

20 लाख नए आवास बनाने की घोषणा की है। राष्ट्रीय आवास नीति के प्रमुख लक्ष्य इस प्रकार हैं :

- आवासहीन व्यक्तियों, विस्थापितों, निराश्रित महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के व्यक्तियों को आवास उपलब्ध कराने के लिए वातावरण निर्मित करना तथा इसके लिए सुविधाएं उपलब्ध कराना।
- आवास-निर्माण के लिए भूमि, वित्त, भवन निर्माण सामग्री तथा तकनीक आदि की आम लोगों तक पहुंच सुनिश्चित करना।
- आवास निर्माण में पूंजी निवेश को प्रोत्साहित करना ताकि आवास की राष्ट्रीय आवश्यकता की पूर्ति संभव हो सके।
- नगरीय क्षेत्रों में झुग्गियों तथा तंग बस्तियों का सुधार करना ताकि भूमि के अधिकतम उपयोग द्वारा अधिकाधिक व्यक्तियों को आवास मिल सके।
- अपर्याप्त सुविधाओं वाले मकानों में रहने वाले व्यक्तियों की आवासीय स्थिति में सुधार करना तथा उन्हें सभी बुनियादी सेवाओं और सुविधाओं का न्यूनतम स्तर उपलब्ध कराना।
- आवास संबंधी कार्यों के लिए विभिन्न स्तर पर सहकारी संस्थाओं, विभिन्न एजेंसियों तथा सामुदायिक व निजी संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करना।
- पर्यावरण संरक्षण, तकनीकी विकास तथा आवास सूचना प्रणाली आदि को बढ़ावा देना।

आवास निर्माण की सहायक संस्थाएं

देश में आवास समस्या को देखते हुए आवासों के निर्माण की अत्यंत आवश्यकता है। इसीलिए निजी, सार्वजनिक और सहकारी क्षेत्र की अनेक संस्थाएं मकानों के निर्माण में संलग्न हैं।

आवास निर्माण में निजी क्षेत्र की भूमिका : व्यक्ति आर्थिक रूप से सक्षम होते ही अपना मकान बनाने के लिए प्रयत्नशील हो जाता है। ऐसे व्यक्ति या तो स्वयं अपना मकान बनवाते हैं या विभिन्न गृह निर्माण संस्थाओं द्वारा बनाए गए भवनों में अपने लिए फ्लैट ले लेते हैं। आज के व्यस्तता और जटिलता भरे जीवन में व्यक्ति के लिए स्वयं मकान बनवाना टेढ़ी खीर है। इसलिए आवास निर्माण में ठेकेदारों का प्राय: सहयोग लिया जाता है। आवासों की मांग बढ़ने के कारण प्राइवेट बिल्डर्स का व्यवसाय भी निरंतर बढ़ रहा है किंतु इस क्षेत्र से केवल उच्च आय समूह तथा उच्च मध्यम आय समूह के लोगों की ही आवास आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। प्राइवेट बिल्डर्स मुख्यत: बड़े शहरों में बहुमंजिले आवासों का निर्माण कर उनका विक्रय करते हैं।

आवास निर्माण में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका : आवास निर्माण के कार्य में केंद्र सरकार, राज्य सरकारें, सार्वजनिक वित्तीय संस्थाएं तथा विकास प्राधिकरण महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। देश के विभाजन के तत्काल बाद शरणार्थियों के पुनर्वास के लिए एक आवास कार्यक्रम चलाया गया जो 1960 तक चलता रहा जिसके अंतर्गत लगभग 5 लाख परिवारों को आवास उपलब्ध कराए गए। 1957 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अंतर्गत एक ग्रामीण आवास योजना शुरू की गई जिसमें व्यक्तियों तथा सहकारी समितियों को प्रति आवास अधिकतम 5,000 रुपये उपलब्ध कराए गए। इस योजना के अंतर्गत 1980 तक 67,000 आवास बने। न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम और बीस सूत्री कार्यक्रम में ग्रामीण आवास स्थल एवं आवास निर्माण योजना को उच्च प्राथमिकता प्रदान की गई। सरकार द्वारा सामाजिक आवास योजनाओं के अंतर्गत पटरी पर रहने वाले व्यक्तियों को रात्रि आश्रय, गंदी बस्तियों में रहने वाले व्यक्तियों को बुनियादी सेवाएं, सफाई कर्मचारियों की मुक्ति के लिए विशेष शौचालयों का निर्माण, हथकरघा व बीड़ी मजदूरों को आवास के लिए अनुदान, प्राकृतिक आपदाओं में क्षतिग्रस्त मकानों के पुनर्निर्माण के लिए सहायता, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों के व्यक्तियों को कम लागत वाले आवास उपलब्ध कराए जाते हैं। विभिन्न राज्यों की आवास और विकास परिषदें अपने द्वारा विकसित कालोनियों में निम्न, मध्यम और उच्च वर्ग के लोगों को आसान किस्तों पर आवास व भूखंड सुलभ कराती हैं।

इंदिरा आवास योजना : 'एक पंथ दो काज' की कहावत को चरितार्थ करते हुए वर्ष 1980 में क्रमश: राष्ट्रीय रोजगार कार्यक्रम तथा वर्ष 1983 में ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम प्रारंभ किए गए जिनका उद्देश्य ग्रामीण रोजगार के अवसर बढ़ाने के साथ-साथ ग्रामीण आवासों के निर्माण को प्रोत्साहित करना था। 1985 में केंद्र सरकार ने अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा मुक्त बंधुआ मजदूरों के आवासों के निर्माण के लिए ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम का एक भाग निर्धारित कर दिया जिससे इंदिरा आवास योजना शुरू हुई। यह जवाहर रोजगार योजना के एक भाग के रूप में शुरू की गई। बाद में 1989 में इंदिरा आवास योजना ने राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम/ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम का स्थान ले लिया। जनवरी 1996 से इंदिरा आवास योजना, जवाहर रोजगार योजना से पृथक एक स्वतंत्र योजना के रूप में चल रही है।

इंदिरा आवास योजना का क्षेत्र आवश्यकतानुसार बढ़ता जा रहा है। प्रारंभ में इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रहे अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा मुक्त बंधुआ मजदूरों को नि:शुल्क आवास उपलब्ध कराना था। बाद में इसके कार्यक्षेत्र में गैर-अनुसूचित जातियों/जनजातियों के ग्रामीण गरीबों तथा युद्ध में मारे गए सशस्त्र सैनिकों व अर्द्ध-सैनिक बलों के परिवारों को भी शामिल किया गया। वर्तमान में इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत आवास निर्माण के लिए सहायता राशि प्रति आवास अधिकतम 20,000 रुपये है। लाभार्थियों का चयन करते समय उन परिवारों को वरीयता दी जाती है जिनकी मुखिया विधवा, अविवाहित महिलाएं, विकलांग अथवा शरणार्थी हैं या जो अत्याचारों अथवा प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित हैं या जो विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापित हैं या खानाबदोश हैं।

इंदिरा आवास योजना आवासहीन गरीबों को छत के साथ सुरक्षा और प्रतिष्ठा प्रदान करने वाली महत्वपूर्ण योजना सिद्ध हुई है। इस योजना के अंतर्गत 1985-86 से 1995-96 तक लगभग 30 लाख आवास बनाए गए। 1996-97 में 11,23,560 आवासों के लिए 1,425 करोड़ रुपये आबंटित किए गए।

आवास हेतु वित्त प्रदान करने वाली प्रमुख संस्थाएं

आवास के लिए वित्त पहली आवश्यकता है। व्यक्ति वित्त की कमी के कारण ही अपना आवास बनाने में असमर्थ रहते हैं। विशेष रूप से गरीबों के लिए तो मकान एक दिवास्वप्न प्रतीत होता है किंतु अब आवास के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने वाली संस्थाएं इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान कर रही हैं जिससे आवास की समस्या को हल करने में मदद मिल रही है।

आवास एवं शहरी विकास निगम (हुडको) : हुडको की स्थापना 1970 में भारत सरकार के एक सार्वजनिक उपक्रम के रूप में शहरी विकास मंत्रालय के प्रशासकीय नियंत्रण में की गई। हुडको के मुख्य उद्देश्य में आवास और शहरी विकास के कार्यक्रमों को चलाना, नए नगरों की स्थापना करना तथा भवन-निर्माण में आवश्यक सामग्री बनाने वाले उद्योगों की स्थापना करना है।

कुछ वर्षों से हुडको ने तकनीकी-सह-वित्त पोषक संस्था का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। हुडको ने मानव आवास और विकास के क्षेत्र में कार्यरत अनेक प्रशिक्षण तथा अनुसंधान संस्थाओं की स्थापना और विकास में व्यापक योगदान किया है। इनमें अखिल भारतीय आवास विकास संगठन, आवास पोलिटेकनिक, भारतीय निवासन केंद्र तथा मानव निवासन व्यवस्थापकीय संस्था आदि प्रमुख हैं। हुडको के कार्यक्षेत्र का विस्तार शहरी आवास, ग्रामीण आवास, गंदी बस्तियों में पर्यावरणीय सुधार, भवन-निर्माण स्तर में सुधार, स्वच्छता, सहकारी आवास, मरम्मत और नवीनीकरण, रैन बसेरा, कामकाजी महिलाओं के होस्टल, भूमि अर्जन आदि योजनाओं तक हो गया है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में हुडको ने भूमि अर्जन तथा उसके सुधार हेतु गरीब व्यक्तियों को ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में प्रत्यक्ष सहायता उपलब्ध कराने का कार्यक्रम बनाया। अप्रैल 1995 तक हुडको द्वारा विभिन्न आवास योजनाओं के अंतर्गत 57.3 लाख मकानों के लिए सहायता दी गई जिनमें से लगभग 28.5 लाख मकान ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। हुडको की सहायता से बनाए गए मकानों में से 90 प्रतिशत आर्थिक रूप से कमजोर लोगों के लिए हैं।

राष्ट्रीय आवास बैंक : अनेक अध्ययन दलों की अनुशंसा के आधार पर आवास निर्माण हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करने वाली राष्ट्रीय स्तर की संस्था के रूप में 9 जुलाई 1988 को राष्ट्रीय आवास बैंक की स्थापना भारतीय रिजर्व बैंक के पूर्ण स्वामित्व में की गई। राष्ट्रीय आवास बैंक का प्राथमिक कार्य ऐसी संस्थाओं का विकास करना है जो आवास निर्माण हेतु वित्त उपलब्ध करा सकें।

राष्ट्रीय आवास बैंक आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए आवास निर्माण हेतु साधन उपलब्ध कराता है। आवास हेतु वित्तीय सहायता देने वाली संस्थाओं को तकनीकी एवं प्रशासकीय सहयोग प्रदान करता है तथा आवास निर्माण में संलग्न समस्त संस्थाओं में समन्वय स्थापित करता है। राष्ट्रीय आवास बैंक ग्रामीण क्षेत्रों, छोटे तथा मध्यम वर्ग के नगरों में आवासीय भूखंडों का विकास करता है। राष्ट्रीय आवास बैंक ने जुलाई 1989 में 'गृह जमा योजना' प्रारंभ की। इस योजना का उद्देश्य अपनी सहायता स्वयं करना है। इसमें व्यक्ति अपनी बचत जमा कराकर ब्याज, आयकर में छूट तथा आवास ऋण का लाभ प्राप्त करता है। राष्ट्रीय आवास बैंक राज्यों के शीर्ष सहकारी संघों, अनुसूचित व्यावसायिक बैंकों तथा भूमि विकास बैंकों आदि को आवास के लिए ऋण प्रदान करने हेतु आर्थिक सहायता प्रदान करता है। आवासों की लागत कम करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय आवास बैंक भवन निर्माण सामग्री उत्पादित करने वाले उद्योगों को वित्तीय सहायता देता है।

भारतीय जीवन बीमा निगम : भारतीय जीवन बीमा निगम अपनी कुल जमा पूंजी का 25 प्रतिशत सामाजिक परियोजनाओं जैसे आवास निर्माण, विद्युतीकरण, जल प्रदाय एवं सड़क परिवहन आदि में आवश्यक रूप से विनियोजित करता है। आवास निर्माण हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करने के क्रम में भारतीय जीवन बीमा निगम सामाजिक आवासीय परियोजनाओं के लिए राज्य सरकारों को 25 वर्षीय ऋण के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करता है। निगम द्वारा हुडको को भी आवास निर्माण और नगर विकास परियोजनाओं के लिए 15 वर्षीय ऋण दिया जाता है। जीवन बीमा निगम राज्य शीर्ष आवास सहकारी संघों, सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र की कंपनियों, सरकारी उपक्रमों तथा विश्वविद्यालयों और कर्मचारियों की आवास सहकारी समितियों को भी आवास ऋण उपलब्ध कराता है।

जीवन बीमा निगम द्वारा सामान्य जनता को आवास ऋण देने की स्वतंत्र जीवन बीमा आवासीय वित्त योजना चलाई जाती है। इसके अतिरिक्त निगम द्वारा अपने बीमाधारकों के लिए 'अपना मकान', 'अपना प्रकोष्ठ' एवं 'बीमा निवास योजना' का कार्यान्वयन आवास निर्माण हेतु किया जाता है।

व्यावसायिक बैंक : भारतीय रिजर्व बैंक ने व्यावसायिक बैंकों को निर्देश दिया है कि वे कुल ऋण वितरण का 1.5 प्रतिशत तक सामान्य जनता को आवास निर्माण अथवा आवास खरीदने के लिए उपलब्ध कराएं। यह ऋण निजी आवास अथवा सामूहिक आवास के लिए उपलब्ध कराया जाता है। व्यावसायिक बैंकों द्वारा सहायक आवासीय कंपनियों के संचालन से आवासीय ऋण व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। केनरा बैंक की 'केनफिन योजना', पंजाब नेशनल बैंक की 'पी.एन.बी. हाऊसिंग फाइनेंस लि.' तथा आंध्रा बैंक की 'हाऊसिंग सर्विसेज लि.' आदि व्यावसायिक बैंकों की प्रमुख सहायक आवासीय कंपनियां हैं। इन कंपनियों द्वारा अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों को अपने आवास के लिए प्रोत्साहित करने हेतु कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराया जाता है।

आवास निर्माण में सहकारी क्षेत्र की भूमिका

आवास समस्या को सुलझाने में सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के साथ सहकारी क्षेत्र भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यों तो सहकारी आवास समितियां लंबे समय से आवासों के विकास में संलग्न थीं किंतु 1969 में भारतीय राष्ट्रीय सहकारी आवास संघ की स्थापना के बाद सहकारी आवास आंदोलन को गति प्राप्त हुई। भारतीय राष्ट्रीय सहकारी आवास संघ विभिन्न राज्यों में शीर्ष सहकारी आवास संघों के गठन को प्रोत्साहित करता है। वर्तमान में 25 राज्यों में शीर्ष सहकारी आवास संघ कार्य कर रहे हैं। ये संघ आवास निर्माण, भूखंड खरीदने, मरम्मत और विस्तार के लिए ऋण प्रदान करते हैं तथा राज्य सहकारी संस्थाओं के मार्गदर्शन, पर्यवेक्षण और समन्वय का कार्य करते हैं।

भारतीय राष्ट्रीय सहकारी आवास संघ देश की समस्त सहकारी आवास समितियों को तकनीकी, वित्तीय तथा व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में सहयोग देता है। सदस्य संस्थाओं का मार्गदर्शन करते हुए उनके कार्यों में समन्वय स्थापित करता है। राज्यों की शीर्ष आवास सहकारी संघों को जीवन बीमा निगम तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से वित्त उपलब्ध कराने में भारतीय राष्ट्रीय सहकारी आवास संघ महत्वपूर्ण योगदान करता है। भवन निर्माण की सामग्री को बनाने और संग्रह में भी यह संघ सक्रिय है। राष्ट्रीय आवास समस्याओं के संबंध में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर राष्ट्रीय सहकारी आवास संघ देश का प्रतिनिधित्व करता है। यह संघ सहकारी आवास समस्याओं के संबंध में अनुसंधान भी करता है। राष्ट्रीय सहकारी आवास संघ ने एक तकनीकी सेवा प्रकोष्ठ की भी स्थापना की जो सहकारी समितियों को आवास निर्माण में आवश्यक तकनीकी सेवाएं उपलब्ध कराता है।

सहकारी आवास संस्थाओं ने देश में आवासों के निर्माण में महत्वपूर्ण सहयोग किया है। इनके द्वारा 15 लाख से अधिक पक्के आवास बनाए गए हैं। कच्चे और अर्द्ध-पक्के आवास बनाने में इन्होंने पर्याप्त योगदान किया है। भारतीय राष्ट्रीय सहकारी आवास संघ की एक रिपोर्ट के अनुसार सहकारी आवास समितियों द्वारा निर्मित आवासों में से लगभग 59 प्रतिशत आवास कमजोर एवं अल्प आय वर्ग के लोगों के लिए तथा लगभग 30 प्रतिशत मध्यम आय वर्ग के लोगों के लिए हैं। आज देश में लगभग 85 हजार प्राथमिक सहकारी आवास समितियां कार्यरत हैं।

आवास समस्या के दुष्परिणाम

आवास की कमी व्यक्तियों को आश्रयहीन बना कर पतन की ओर मोड़ देती है जिस कारण वे समाज के साथ समरस नहीं हो पाते हैं। यहां तक कि ये व्यक्ति समाज और स्वयं के लिए बोझ बन जाते हैं। औद्योगिक श्रमिकों और ग्रामीणों में आवास की समस्या अनेक बुराइयों को जन्म देती है। एक अध्ययन के अनुसार भारत की गंदी औद्योगिक बस्तियों के पुरुषों में पाशविक प्रवृत्तियां आ जाती हैं, स्त्रियों का सतीत्व नष्ट हो जाता है तथा बालकों के जीवन को प्रारंभ से ही दूषित कर दिया जाता है।

आवास की दयनीय दशा से व्यक्तियों की कार्य-कुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। छोटी जगह में अधिक लोगों के रहने, सफाई न होने और अंधेरा होने से बीमारियां बढ़ती हैं। बच्चे अकाल मृत्यु के शिकार हो जाते हैं। समुचित आवास न होने के कारण लोग भटकते रहते हैं और अपराधों में संलग्न हो जाते हैं। समाज की शांति और सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार आवास की समस्या अनेक भयंकर बुराइयों की जड़ है। इस समस्या का निदान करके लोगों को देश के विकास में अधिक सहभागी बनाया जा सकता है।

आवास समस्या का समाधान

जनसंख्या की तीव्र वृद्धि आवास समस्या का प्रमुख कारण है। इसलिए आवास समस्या पर प्रभावी नियंत्रण के लिए जनसंख्या वृद्धि पर दृढ़ता से रोक लगाई जानी चाहिए। इससे बेरोजगारी, अपराध, खाद्य प्रदूषण, परिवहन, स्वास्थ्य और शिक्षा आदि समस्याओं के निवारण में भी सहायता प्राप्त होगी।

वित्त की कमी आवास निर्माण में सबसे बड़ी बाधा है। इसलिए सरकार को आवास हेतु सस्ते ऋण सुलभ कराने की व्यवस्था करनी चाहिए। गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले लोगों को कम लागत वाले आवास उपलब्ध कराने चाहिए। गंदी बस्तियों के उद्धार के लिए निश्चित समय-सीमा वाले कार्यक्रम बनाए जाने चाहिए, जिससे देश के मेहनतकश लोगों को नारकीय जीवन से मुक्ति दिलाकर पतन से बचाया जा सके और वे अच्छे नागरिक बन सकें।

आवास नागरिकों के लिए सुरक्षा का ऐसा कवच है जो उन्हें तमाम बुराइयों से बचाकर नैतिक मूल्यों से जोड़ता है। लोगों को ऐसा आवास मिलना चाहिए, जिसमें वे चैन की सांस ले सकें और उन्हें सुख की खोज में बाहर न भटकना पड़े। उनके बच्चों का बचपन गंदी नालियों और कूड़े के ढेरों में न खो जाए। सही मायने में देखा जाए तो देश का भविष्य आवास समस्या के समाधान में दृष्टिगोचर होता है। इसलिए इस पर पूरा ध्यान देने की आवश्यकता है। ❑

(पृष्ठ 2 का शेष) **पाठकों के विचार**

द्वारा प्रस्तुत सफलता की कहानी *पानी बिहार गांव का सर्वांगीण विकास* में पंचों-सरपंचों और ग्राम सभा की सक्रियता और जागरूकता को सराहा गया जिसकी वजह से उसे वर्ष 1996 का सर्वश्रेष्ठ पंचायत का पुरस्कार मिला। ऐसे ही हर गांव की ग्राम सभा, सरपंच अपनी-अपनी भूमिका का निर्वाह करें तो यह पुरस्कार उन्हें भी मिल सकता है।

जिस प्रकार महिलाओं को आरक्षण मिला, उनकी साक्षरता की स्थिति सुधर रही है, उन्हें हर तरह से प्रशिक्षित किया जा रहा है, ऐसे में महिलाओं का दायित्व है कि वे पंचायत में शामिल होकर स्थानीय स्तर पर उपलब्ध प्राकृतिक एवं मानवीय साधनों के सदुपयोग में योगदान दें, जो उनके बिना संभव नहीं है।

पद्मा (शोध छात्रा), सिगरा वाराणसी

कुरुक्षेत्र 40 वर्ष पहले

घाघ और भड्डुरी की सूक्तियां

कुमार 'निर्मोही'*

जन-जीवन के मर्मज्ञ, कृषि शास्त्र के आचार्य, ज्योतिष शास्त्र के प्रकांड पंडित 'घाघ' और 'भड्डुरी' अपने समय के दो महान सूक्तिकार हो गए हैं। जहां 'घाघ' कवि की सूक्तियों का प्रचलन बैंसवाड़ी, अवधी, भोजपुरी तथा पूर्वी बोलियों में है, वहां 'भड्डुरी' की सूक्तियां पंजाब और राजपूताने के जन-जीवन में व्याप्त हैं। किंतु स्थान भेद के कारण प्राय: कहावतों की भाषा एवं शब्दों में अंतर आना स्वाभाविक है।

किसानों के अंतर के परीक्षक के रूप में दोनों लोक कवियों ने युगीन प्रतिनिधित्व किया है। वर्षा, खेती की बुआवणी, बीज, बैलों (वृषभ) की किस्म, ज्योतिष शास्त्र के अनुभूत नक्षत्रों के ज्ञान को लोक कवियों ने अपनी सूक्तियों में बहा कर जन-जीवन में व्याप्त किया है।

आज भी अवध के जिलों में हमें हर एक किसान के मुंह से 'घाघ' की सूक्तियां सुनाई देंगी तो पंजाब में 'भड्डुरी' की। आज भी प्रदेशों का जन-जीवन घाघ-भड्डुरी की सूक्तियों की सत्यता-प्रामाणिकता में डूबा हुआ है, उनमें अपनी आशाएं केंद्रित किए हुए है। हमारा लोक साहित्य आज शताब्दियों बाद भी इन चित्रों को ज्यों का त्यों अपने में समेटे हुए है—अंकित किए हुए हैं। यहां पर हम कुछ सूक्तियां, जो किसानों की आशा-आकांक्षा को लिए हैं, प्रस्तुत कर रहे हैं जिनमें वर्षा, खेती की बुआई की नीति आदि से संबंधित सूक्तियों का अवलोकन कीजिए।

* अगस्त 1958 अंक से उद्धृत

वर्षा-विषयक 'घाघ' की सूक्तियां देखिए—

चढ़त जो बरसै चित्रा, उतरत बरसै हस्त।
कितनों राजा डांड़ ले, हारे नाहि गृहस्त॥

—'अगर चित्रा नक्षत्र के चढ़ते और हस्त नक्षत्र के उतरते वर्षा हो जाए, तब राजा कितना ही कर क्यों न ले, गृहस्थ कभी हार नहीं मान सकते हैं, अर्थात उपज अत्यधिक होती है।'

ज्योतिष विज्ञान का पुट लिए प्रस्तुत सूक्ति का अवलोकन कीजिए—

माघ पूस जो दखिना चले,
तो सावन के लच्छन भले॥

—'यदि माघ-पौष में दक्षिण की ओर हवा चले, तो वर्षा उत्तम होगी।'

धनुष पड़े बंगाली, मेह सांझ या सकाली।

—'अगर बंगाल की तरफ इंद्र धनुष निकले तो जान लेना चाहिए कि सुबह या शाम में वर्षा होगी।'

अब वर्षा और सुकाल से संबंधित 'भड्डुरी' की सूक्तियां देखिए—

फागुन बदी सुदूज दिन, बादर होय ना बीज,
बरसै सावन भादवा, साधो खेलो तीज।

—'फागुन बदी द्वितीया को यदि आकाश में न तो बादल हों और न बिजली, तो सावन-भादों में उत्तम वृष्टि होगी। इसलिए सज्जनो, आनंद और उल्लास से तीज का पर्व मनाओ।'

ज्योतिष ज्ञान के आचार्य भड्डुरी की प्रस्तुत सूक्ति का अवलोकन कीजिए—

सुदि सावन की नौमि दिना, बाहर झिनों चंद।
जानै भड्डर भूमि पर—मानो होय आनंद॥

—'भड्डुरी कहते हैं कि यदि आषाढ़ सुदी नवमी के दिन चंद्रमा के ऊपर हल्का-सा बादल छाया रहे तो पृथ्वी पर आनंद होगा।'

लोक कवि भड्डुरी की महंगी-अकाल के लक्षण की सूक्तियां देखिए—

आगे मेघा पीछे भान,
पानी-पानी रटे किसान।

—'जब आगे माघ और पीछे सूर्य हो, तो सूखा पड़ेगा। ऐसे समय किसान पानी-पानी की रट लगाएगा।'

हमें भड्डुरी की सूक्तियों में मालवे की उर्वर भूमि का परिचय मिलता है। उसी का वर्णन प्रस्तुत सूक्ति में अवलोकन कीजिए—

सावन कृष्ण एकादशी, गर्जि मेघ घहरात।
तुम जिओ पिय 'मालवा', हम जावें गुजरात।

—'सावन-कृष्ण एकादशी को यदि बादल गरज-गरज कर गहराता रहे तो निश्चित ही अकाल पड़ेगा। हे प्रियतम, तुम मालवा के उर्वर प्रदेश में चले जाना, मैं अपने नेहर गुजरात चली जाऊंगी।'

तेरह दिन का देखी पाख,
अन्न महंगो समझो बे खाख।

—'अगर तेरह दिन का पक्ष पड़े तो समझना चाहिए कि अन्न महंगा हो जाएगा।'

(शेष पृष्ठ 41 पर)

ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती बाल मजदूरी

नीलिमा कुंवर एवं वंदना वर्मा *

दुनिया भर में बाल मजदूरी को खत्म करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा नए कानूनों को अपनाकर बाल मजदूरों की बदतर स्थितियों के खिलाफ संघर्ष हो रहा है। लेकिन आज भी स्थिति यह है कि बाल मजदूरों की संख्या कम होने की जगह दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यह संख्या न केवल शहरी क्षेत्र में बढ़ रही है, बल्कि गांवों में भी बाल मजदूरों की संख्या बढ़ रही है।

समाज में उपलब्ध सुविधाओं से वंचित वे बच्चे जो 14 वर्ष या उससे कम आयु से ही रोजगार में संलग्न होते हैं, उन्हें बाल मजदूर कहा जाता है। 1760-1840 के मध्य हुई औद्योगिक क्रांति की शुरुआत से बाल मजदूरी का भी प्रारंभ हुआ। भारत में बाल मजदूरी की शुरुआत 19वीं शताब्दी के मध्य में कारखानों, जूट मिलों और खदानों में बच्चों के काम करने से हुई। साधारणतय: बाल मजदूर के दो रूप होते हैं:

1. अभिभावक के साथ बच्चों का काम में सहायता करना।
2. परिवार की आय बढ़ाने के लिए बच्चों का काम करना।

चाहे शहरी क्षेत्र हो या ग्रामीण क्षेत्र, बाल मजदूरी के बढ़ने का प्रमुख कारण गरीबी है। अन्य कारणों में अधिक जनसंख्या, अशिक्षा तथा बेरोजगारी है। भारत में लगभग 32 करोड़ लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रहे हैं। गरीब परिवारों को जीवन-यापन के लिए धन की कमी रहती है। इसलिए बच्चों को मां-बाप की सहायता के लिए काम करना पड़ता है। सामान्यत: श्रमशील बच्चे पारिवारिक आय में 20 से 25 प्रतिशत तक का योगदान करते हैं। बच्चों द्वारा कमाया गया धन परिवार के अस्तित्व के लिए बहुत सहायक होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों से अधिक बाल मजदूरी बढ़ने का कारण गांवों में शहरों की अपेक्षा अधिक गरीब लोगों का रहना है। बच्चों में काम करने की अधिक क्षमता होती है तथा कई ऐसे काम हैं, जिन्हें बच्चे आसानी से कर सकते हैं। इसके अलावा उन्हें पैसे भी कम देने पड़ते हैं। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि बच्चे अपने अधिकारों को नहीं जानते हैं इसलिए कम दिक्कतें पैदा करते हैं, आदेश का पालन करते हैं, बिना शिकायत किए काम करते हैं तथा कम छुट्टी लेते हैं। शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चे अधिकतर मिट्टी के बर्तन बनाने में, कांच की चूड़ी बनाने में, ताला बनाने में, माचिस बनाने में, बीड़ी बनाने में, खेती के कार्यों में—मेड़ बनाना, आलू खोदना, खाद डालना, जंगल से लकड़ी बीनकर लाना और पशुओं को चराना जैसे कार्यों में लगे हुए हैं। इसके अतिरिक्त बच्चे शहरों में होटलों तथा घरों में काम करते हैं। इन बच्चों में ज्यादा संख्या ऐसे बच्चों की होती है जो गांवों से आकर शहर में काम करते हैं। उत्तर प्रदेश में खुर्जा में मिट्टी बर्तन उद्योग में आज बच्चे वैसा ही काम कर रहे हैं जैसे कि 19वीं शताब्दी में इंग्लैंड में बाल कुम्हार किया करते थे। अलीगढ़ के ताला उद्योग तथा फिरोजाबाद के कांच उद्योग में लगभग 7,000 से 10,000 बच्चे प्रत्येक उद्योग में काम कर रहे हैं। इन बच्चों का यहां शोषण होता है क्योंकि बहुत कम मजदूरी पर उनसे 12 घंटे काम लिया जाता है। एक गैर-सरकारी सर्वेक्षण के अनुसार कांच की चूड़ी उद्योग में 40,000 से 50,000 तक बाल मजदूर काम कर रहे हैं।

जब बच्चों को जोखिम भरे कामों में लगाया जाता है तो प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर पड़ता है। कांच की चूड़ी बनाने में लगे बच्चों को 700 से 800 सेल्सियस के तापमान में भट्टी के सामने 12 घंटे खड़े होकर काम करना पड़ता है। आजकल कुछ ऐसी टैंक-भट्टियां काम कर रही हैं जिनका तापमान 1,800 सेल्सियस तक होता है। इससे बच्चों को बहुत परेशानी होती है और उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता है। गांवों में खाद छिड़कने का काम, बीज शोधन का काम तथा रासायनिक दवाइयों के छिड़कने का काम भी इनसे लिया

*उपनिदेशक, राज्य ग्रामीण विकास संस्थान, लखनऊ

जाता है जो बहुत हानिकारक होता है। अधिकतर बच्चों को टी.बी. जैसी बीमारियां हो जाती हैं। कुछ मां-बाप का यह तर्क होता है कि मेरा बच्चा कुछ कमा कर घर ला रहा है, सड़क पर आवारागर्दी नहीं कर रहा है और जिंदगी बरबाद नहीं कर रहा है। लेकिन वह यह नहीं सोचते हैं कि जब बच्चा बड़ा होगा तो उसकी उत्पादन क्षमता कम हो चुकी होगी। ग्रामीण क्षेत्रों में तो बहुत कम उम्र के बच्चों को काम पर लगा दिया जाता है। मां-बाप यह भूल जाते हैं कि बच्चा जितना छोटा होगा, कार्य स्थल में शारीरिक, रासायनिक और अन्य खतरों के प्रति वह उतना ही संवेदनशील होगा। जोखिम भरे उद्योगों के मामले में किसी भी प्रकार का समझौता नहीं करना चाहिए और श्रम निषेध कानून सख्ती से लागू करते हुए इन बाल मजदूरों को अनिवार्य रूप से शिक्षा देनी चाहिए। वैसे तो उत्तर प्रदेश सरकार ने बाल मजदूरों को शिक्षा देने के लिए 160 विशेष विद्यालय प्रस्तावित किए हैं, लेकिन अभी ताला उद्योग, कांच उद्योग तथा कुछ अन्य उद्योगों में कार्यरत बाल मजदूरों के लिए विशेष विद्यालय चल रहे हैं। ऐसे स्कूलों में कम-से-कम चार घंटे प्रतिदिन पढ़ाई हो तो अच्छा होगा। इसके लिए मालिकों को मजबूर किया जाए कि वह बच्चों को स्कूल में पढ़ने अवश्य भेजें।

विशेष विद्यालयों में औपचारिक शिक्षा प्रणाली में पांच लाख गांवों के लिए विद्यालय हैं और अनौपचारिक केंद्रों पर स्कूल छोड़ गए बच्चों पर ध्यान दिया जाता है। खतरनाक उद्योगों में काम करने वाले बच्चों के लिए विशेष विद्यालयों की जरूरत इसलिए है, क्योंकि इन बच्चों ने कुछ कार्य-दक्षता पहले ही हासिल कर ली है, उनमें से कुछ शिक्षित हैं, कुछ अर्धशिक्षित तथा कुछ निरक्षर हैं। इन बच्चों ने अपने बचपन में बहुत कठिनाइयों और शारीरिक तथा मानसिक यंत्रणाओं को झेला है। मालिक लोग इनके साथ बेदर्दी से पेश आते हैं। इसलिए एक ऐसा बहुआयामी सुसंगठित पैकेज बनाया गया है, जो इनके स्वास्थ्य, पोषण, रहन-सहन की सफाई इत्यादि के साथ-साथ लिखने-पढ़ने, कार्यक्षमता हासिल करने में सहायक हो। विशेष विद्यालयों से पढ़ने के बाद वे कोई बेहतर विकल्प ढूंढने में सक्षम हो सकें और पुन: जोखिम भरे उद्योगों में वापस काम करने न जा सकें।

बाल मजदूरी को खत्म करने के लिए सरकार प्रयत्नशील है तथा इसके लिए उच्चतम न्यायालय ने एक ऐतिहासिक निर्णय भी लिया है कि बाल मजदूरों का पता लगाया जाए और उन्हें शिक्षण संस्थाओं में भर्ती कराया जाए। लेकिन इसके बावजूद इनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं हो रहा है क्योंकि वे बाल मजदूर जिनका पता लगाया गया था वे फिर से कारखानों में लौट गए हैं। वास्तव में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के बाद राज्य सरकारों ने जिस ढंग से बाल मजदूरों का पता लगाने का अभियान चलाया था उससे हजारों बाल मजदूरों के परिवार भुखमरी के कगार पर पहुंच गए थे। सरकार ने बाल मजदूरों के बारे में पता लगाने के लिए घोषणा कर दी थी जिससे मालिकों ने बाल मजदूरों को नौकरी से निकाल दिया और परिवार की आय खत्म हो गई। अब तक के किए गए प्रयासों तथा उनसे मिले परिणामों के अनुभवों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बाल मजदूरी को खत्म करना आसान नहीं है, इसके लिए कई चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा जैसे—गरीबी अथवा बेरोजगारी, शोषण की प्रवृत्ति, सामाजिक विचारधारा, नियमों तथा कानूनों को अप्रभावी ढंग से लागू करना, आंकड़ों की सही उपलब्धता न होना, पुनर्वास एवं शिक्षा की व्यवस्था का अभाव होना। आज अंतर्राष्ट्रीय झुकाव बाल मजदूरी खत्म करने की ओर है। इससे आशा करनी चाहिए कि इस समस्या को अगर पूरी तरह से खत्म नहीं किया जा सकता तो कम जरूर किया जा सकेगा। सरकार के दृढ़ निश्चय, गैर-सरकारी संगठनों और श्रमिक संघों की भागीदारी और जन-चेतना के प्रयासों से जो अनुकूल वातावरण बना है, उससे यह विश्वास होता है कि लाखों-करोड़ों बच्चों को अपने अधिकार प्राप्त करने में सफलता मिल सकेगी। ❑

लघुकथा

आलोचना

चित्रेश

मास्टर साहब बारात से लौटे थे। अभी वे बिस्तर वगैरह रखकर बैठे ही थे कि उनकी पत्नी ने पूछा—"बारात में कैसी गुजरी?"

"कोई खास बात नहीं हुई। सब मजे में रहा।"—मास्टर साहब ने बताया—"हां, जिस गांव में बारात गई थी, वहां एक विचित्र बात देखने में आई।"

पत्नी की जिज्ञासा का पैमाना छलकने लगा। उसके आग्रह करने पर उन्होंने बताया—"हमारी बारात जिसके यहां गई थी, वे दो भाई हैं। आमने-सामने दोनों की हवेलियां खड़ी हैं। दूसरे भाई के यहां भी बारात आई थी, लेकिन दोनों का इंतजाम एकदम भिन्न था। जिस भाई के यहां हमारी बारात गई थी, उसकी सारी व्यवस्था एकदम सादी थी—जैसा कि देहात का सामान्य आदमी करता है। इसके विपरीत दूसरे भाई के इंतजाम का क्या कहना! ठीक पुराने समय के ताल्लुकेदारों जैसा ठाठ था। हमारे वाले घराती की बड़ी आलोचना हुई। जिसे देखो, वही कह रहा था—"लगता है, बाबू साहब खोक्खे हो चुके हैं। सिर्फ दिखाने को खानदानी हवेली बची रह गई है।"

"पुराने रईस और ऐसी कंजूसी! बात ही आलोचना लायक थी।"—पत्नी ने नाक सिकोड़ते हुए कहा—"वैसे दूसरे भाई की दरियादिली की तो लोगों ने खूब प्रशंसा की होगी।"

"छोड़ो जी, कौन किसकी प्रशंसा करता है? यही तो माजरा समझ में नहीं आता। सब यही कह रहे थे कि बाबू साहब ने अपनी रईसी की नुमाइश की है।"—मास्टर साहब ने सपाट स्वर में जवाब दिया। ❑

प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वालों के लिए उपयोगी पत्रिका

योजना

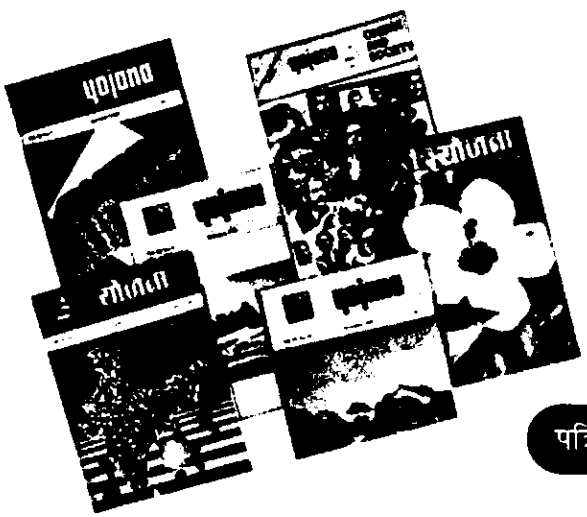

- आर्थिक एवं सामाजिक विषयों की मासिक पत्रिका

योजना में आप पाएंगे :

- अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं पर ज्ञानवर्धक सामग्री विकास तथा योजना प्रक्रिया का गहन एवं विस्तृत विश्लेषण
- पर्यावरण, साक्षरता, विज्ञान एवं टेक्नोलौजी और पर्यटन जैसे आर्थिक-सामाजिक विषयों पर विशेषज्ञों द्वारा लिखित सारगर्भित लेख
- विभिन्न विकास योजनाओं की जानकारी

पत्रिका आज ही खरीदिए अथवा नियमित ग्राहक बनिए

योजना की विषय सामग्री का चयन प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वाले युवाओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है जो उनकी सफलता में सहायक हो सकती है।

(*योजना* अंग्रेजी, उर्दू, असमिया, बंगला, गुजराती, कन्नड़, मराठी, मलयालम, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु और तमिल में भी निकलती है)

मूल्य : एक प्रति 5/- रु.

चंदे की दरें : ☐ एक वर्ष : 50 रु. ☐ दो वर्ष : 95 रु. ☐ तीन वर्ष : 135 रु.

मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/ पोस्टल आर्डर निम्न पते पर भेजें :

सहायक व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार)
पूर्वी ब्लाक-4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066
दूरभाष : 6105590

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

☐ पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली-110001 ☐ सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001 ☐ हाल नं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 ☐ कामर्स हाउस, करीम भाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई-400038 ☐ 8-एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069 ☐ राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई-600009 ☐ बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004 ☐ प्रेस रोड, तिरुअनंतपुरम-695001 ☐ 27/6, राममोहन राय मार्ग, लखनऊ-226019 ☐ राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500001 ☐ प्रथम तल, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलौर-560034

विक्रय केंद्र ● पत्र सूचना कार्यालय

☐ सी.जी.ओ. काम्प्लैक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर (म.प्र.) ☐ 80, मालवीय नगर, भोपाल-462003 ☐ के-21, नन्द निकेतन, मालवीय मार्ग, 'सी' स्कीम, जयपुर-302001

गांव ड्मरौली, जिला-अलवर (राजस्थान) की केस स्टडी

ग्रामीण विकास के नए क्षितिज

डा. सुरेंद्र कुमार कटारिया

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात भारत में सामाजिक-आर्थिक विकास बहुत तेजी से हुआ है। एक ओर जहां हमारे नागरिकों को शिक्षा, स्वास्थ्य और न्याय जैसी मूलभूत सुविधाएं प्राप्त हो सकी हैं, वहीं दूसरी ओर भौतिक सुख-सुविधाएं भी बढ़ी हैं। विकास की इस प्रक्रिया में हमारे ग्रामीण क्षेत्रों की भी काया-पलट हुई है। विकास की प्रक्रिया को प्रभावित करने में उद्योग, परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य, संचार, ऊर्जा तथा सिंचाई साधनों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। हमारे गांवों की विकास प्रक्रिया को दर्शाता प्रस्तुत शोधपरक लेख एक गांव की केस स्टडी पर आधारित है। लेख में इस गांव को अभावों से जूझती इकाई के रूप में भी देखा है तथा विकास के नए-नए आयाम स्थापित करते समय भी प्रत्यक्षत: देखा है। 1974-77 के दौरान बनी कच्ची सड़क तथा बिजली आपूर्ति को निर्णायक मोड़ समझते हुए शोधकर्ता ने 1975 की स्थिति तथा वर्तमान स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन किया है और बताया है कि भारत के गांव तीव्रता से विकास की सीढ़ियां चढ़ रहे हैं।

भौगोलिक स्थिति

राजस्थान राज्य के समृद्ध जिले अलवर की तहसील बहरोड़ तथा पंचायत समिति नीमराणा के अंतर्गत गांव ड्मरौली स्थित है। यह गांव नई दिल्ली से दक्षिण में 120 किलोमीटर, जयपुर से उत्तर दिशा में 130 किलोमीटर तथा जिला मुख्यालय अलवर से पश्चिम में 70 किलोमीटर दूर स्थित है। हरियाणा राज्य की दक्षिण सीमा से संलग्न यह क्षेत्र 'राठ' कहलाता है। इस क्षेत्र की भैंसें तथा बकरियां अधिक दूध देने के लिए देश भर में प्रसिद्ध हैं। साथ ही बाजरे की सर्वश्रेष्ठ फसल इसी क्षेत्र में होती है। देश भर में सर्वाधिक सरसों राजस्थान राज्य उत्पन्न करता है जबकि राजस्थान में सरसों उत्पादन के लिए यह क्षेत्र अग्रणी है। ऐसा माना जाता है कि पहले इस स्थान पर खेड़ा नाम का एक छोटा गांव था जो किसी प्राकृतिक आपदा के कारण समाप्त हो गया। औरंगजेब-शासन के अंतिम वर्षों में नारनौल (हरियाणा) में हुए सतनामी विद्रोह के बाद मुगलों से बच कर भागे व्यक्तियों ने रेत के ऊंचे-ऊंचे दुर्गम टीलों में इस गांव का पुन: निर्माण किया। चौहान वंशी राजपूतों की रियासत नीमराणा के अधीन यह गांव रहा। इस गांव की मिट्टी बालू रेत है। वर्षा का औसत 600 मिलीमीटर वार्षिक है। जून माह में तापमान 48 डिग्री सेंटीग्रेड तथा सर्दियों में 2 डिग्री सेंटीग्रेड तक जा पहुंचता है। खेजड़ी, कीकर, जाल, बैर, नीम, पीपल यहां के प्रमुख वृक्ष हैं। गांव का कुल सिंचाई क्षेत्र 6,000 बीघा है जिसमें लगभग 15,000 वृक्ष लगे हैं जिनमें से 80 प्रतिशत खेजड़ी के हैं। गांव की 80 प्रतिशत जनता का मुख्य व्यवसाय कृषि ही है।

सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण

ऐसा कहा जाता है कि भारत में सबसे सुरक्षित क्षेत्र 'राठ' है। चोरी, डकैती, बाढ़, भूकंप, तूफान, सूखा, महामारी, सांप्रदायिक दंगों इत्यादि से पूर्णतया अप्रभावित इस क्षेत्र के निवासी शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। इस गांव में यादवों का बाहुल्य है जो मुख्यत: कृषि कार्य करते हैं। अन्य जातियों में खाती, ब्राह्मण, नाई, जोगी, स्वामी, कुम्हार, चमार, धाणक इत्यादि हैं। यह उल्लेखनीय है कि इस क्षेत्र में हरिजनों के साथ सामाजिक दूरी नहीं रखी जाती। इस प्रकार गांव में कुल 520 परिवार हैं जिनकी आबादी 3,274 है। होली, दीपावली, मकर संक्रांति, रक्षाबंधन, जन्माष्टमी तथा तीज यहां के प्रमुख त्यौहार हैं। जन्माष्टमी के दिन गांववासी भगवान कृष्ण के साथ-साथ यहां के मुख्य वृक्ष खेजड़ी की भी पूजा करते हैं। धर्मांधता के भाव से दूर राठ क्षेत्र अपनी स्पष्टवादिता के लिए प्रसिद्ध है। राठ क्षेत्र के निवासी अपनी धुन के पक्के माने जाते हैं।

सारिणी

क्र.सं.	विवरण	1975-77 की स्थिति	1995-96 की स्थिति
1.	कुल परिवार	350	520
2.	जनसंख्या	1800	3274
3.	कच्चे मकान	98	26
4.	पेयजल टंकी	01	05
5.	सिंचाई हेतु कुंएं	22	136 (113 विद्युतीकृत)
6.	कृषि उत्पादन (वार्षिक)		
	(अ) गेहूं	44 टन	600 टन
	(ब) बाजरा	300 टन	400 टन
	(स) चना	80 टन	200 टन
	(द) सरसों	शून्य	400 टन
	(य) जौ	28 टन	90 टन
	(र) ग्वार	80 टन	200 टन
	(ल) मूंग	15 टन	20 टन
	(व) सूरजमुखी	शून्य	10 टन
	(स) तिल	1/2 टन	2 टन
	(ह) कपास	शून्य	70 गांठ
7.	दुग्ध उत्पादन (प्रतिदिन)	3000 लीटर	6000 लीटर
8.	भौतिक साधन		
	(अ) ट्रेक्टर	01	18
	(ब) ऊंट गाड़ी	70	290
	(स) स्कूटर/मोटर साईकिल	02	48
	(द) जीप/कार	शून्य	16
	(य) साईकिल	12	251
	(र) टेलीविजन	01	87
	(ल) रसोई गैस	शून्य	12
	(व) फव्वारा सैट	शून्य	150
9.	मानव संसाधन		
	(अ) राजपत्रित अधिकारी	शून्य	03
	(ब) अध्यापक	14	50
	(स) सैनिक	20	80
	(द) पुलिस सिपाही	शून्य	12
	(य) पटवारी	शून्य	03
	(र) साक्षरता दर	25 प्रतिशत	66 प्रतिशत
	(ल) सैकेंडरी या अधिक शिक्षा प्राप्त	42	590
10.	अन्य विवरण		
	(अ) दुकानें	01	20
	(ब) डाकघर में बचत खाते	25	541
	(स) शिशु मृत्यु-दर	80 प्रति हजार	20 प्रति हजार
	(द) नसबंदी करवाए हुए व्यक्ति	09	413
	(य) प्रति व्यक्ति आय (वार्षिक)	220 रुपये	2500 रुपये
	(र) शीशम के वृक्ष	15	500

विकास के कारक

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात सरकार द्वारा 1952 में प्राथमिक स्कूल, 1955 में डाकघर, 1963 में माध्यमिक स्कूल, 1974 में कच्ची सड़क, 1976 में आयुर्वेद डिस्पेंसरी, 1976-77 में विद्युत कनैक्शन, 1987 में पक्की सड़क, 1991 में स्वास्थ्य केंद्र इस गांव में स्थापित किया गया। लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए गांव में 1990 में पृथक कन्या स्कूल खोला गया। जिन व्यक्तियों के पास पर्याप्त भूमि नहीं थी, उन्हें 1976-77 में राज्य सरकार द्वारा आवास के लिए प्लाट आबंटित किए गए।

पंचायती राज की स्थापना के पश्चात गांव की पंचायत ने विकास के अनेक कार्यक्रम संचालित किए। कुंओं की गहराई अधिक होने के कारण 1970 में गांववासियों ने सामूहिक पेयजल टंकी का निर्माण किया तथा डीजल इंजन की सहायता से पेयजल समस्या दूर की गई। सामुदायिक सहभागिता की मिसाल कायम करने वाले इस गांव में विवाह अवसरों पर प्राप्त भेंट-राशि विकास कार्यों पर व्यय की जाती है। सामुदायिक पेयजल की पांच टंकियां, तीन स्कूल, धर्मशाला इत्यादि गांववालों ने खुद निर्मित करवाई हैं। ग्राम पंचायत के प्रयासों से बांध, स्कूल, कच्चे रास्तों पर पत्थर बिछाने तथा ग्राम पंचायत भवन का निर्माण जैसे कार्य कराए गए। पंचायत के पास आने वाले अनुदान, जवाहर रोजगार योजना, अपना गांव अपना काम योजना तथा अंत्योदय योजना से अनेक विकास कार्यक्रम संचालित हो रहे हैं। 1975 तक मात्र 5 व्यक्तियों ने सरकारी बैंकों से ऋण सुविधा प्राप्त की थी जो आज 150 से अधिक व्यक्तियों को प्राप्त हो चुकी है।

विकास के नए आयाम

राजस्थान के अन्य रेगिस्तानी गांवों की तरह यह गांव भी अभावों से जूझता रहा है। निरक्षरता, गरीबी, कुपोषण तथा अंधविश्वास की समस्याएं यहां व्याप्त रही हैं। केवल बाजरा, चना, मूंग, ग्वार इस गांव में पैदा होता था जो इंद्रदेव की कृपा पर निर्भर करता था। खाने की सब्जियां, प्याज, मिर्च तथा मिठाइयों के लिए मावा शहरों से लाना पड़ता था। ऊंचे-ऊंचे दुर्गम बालू के टीलों के कारण यातायात सुविधाएं भी नहीं थीं। 1974 से पूर्व इस गांव के दुर्गम बालू के टीलों में ट्रेक्टर भी बहुत मुश्किल से पहुंच पाता था। 1974 में राज्य सरकार ने कच्ची सड़क का निर्माण करवाया जो 1987 में पक्की बना दी गई। 1976-77 में गांव में सिंचाई हेतु विद्युत कनेक्शन प्रदान किए गए। फलस्वरूप यहां के किसान बरसात पर निर्भर रहने की अपेक्षा नलकूपों से सिंचाई करने लगे तथा खेतों को समतल किया गया। खाद, अच्छे बीज तथा पानी की पूर्ति होते ही यहां की जमीन सोना उगलने लगी और देखते ही देखते सारा गांव समृद्ध होता चला गया। 1975 तथा 1995-96 के तुलनात्मक आंकड़े सारिणी में वर्णित हैं। 1990 के पश्चात ड्रिप सिंचाई प्रणाली को अपनाते हुए फव्वारा सैट प्रयुक्त होने लगे हैं।

सन् 1975 में गांव में सभी किसानों द्वारा 44 टन गेहूं, 300 टन बाजरा, 80 टन चना, 28 टन जौ, 80 टन ग्वार तथा 15 टन मूंग उत्पादित किया गया जो 1995-96 में क्रमशः 600, 400, 200, 90, 200 तथा 20 टन हो

चुका है। चना तथा मूंग ऐसी फसल हैं जिसके उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हो सकी है। सरसों, सूरजमुखी तथा कपास का उत्पादन 1975 में नहीं होता था जो आजकल क्रमश: 400 टन, 10 टन तथा 70 गांठ प्रतिवर्ष इस गांव में होते हैं। सिंचाई सुविधा तथा परिवहन व्यवस्था उपलब्ध होने के बाद अब प्रत्येक किसान अपने खेत पर फलदार वृक्ष या पौधे तथा मौसमी सब्जियां लगाता है। इनमें नींबू, करौंदा, अनार, पालक, मैथी, टमाटर, बैंगन, भिंडी, घीया, तुरई, मिर्च, तंबाकू तथा प्याज प्रमुख हैं। बीस वर्ष पूर्व यही उत्पाद शहर से लाने पड़ते थे। अब ज्वार का उत्पादन केवल पशुओं के हरे चारे के लिए किया जाता है। 1975-76 तक इस गांव की खेती वर्षा पर निर्भर थी। सिंचाई हेतु मात्र 22 कुंएं थे जो आज 136 हैं। 1977 से पूर्व यहां के किसान ऊंट से खेती-कार्य करते थे लेकिन अब खेती-कार्य पूर्णतया ट्रेक्टर द्वारा होता है। ऊंट, गधा, खच्चर से बोझा ढोने, भैंस, गाय, बकरी से दूध प्राप्ति हेतु गांववासियों के पास 5,000 पशु हैं।

1990 से पूर्व गांव में एक भी राजपत्रित अधिकारी नहीं था। अब गांव के तीन युवा अधिकारी विभिन्न सेवाओं में कार्यरत हैं। सरकारी नौकरियों में 80 सैनिक, 50 अध्यापक, 12 पुलिस सिपाही, 3 पटवारी तथा 13 अन्य रोजगारों में कार्यरत हैं। 1975 में मात्र 14 अध्यापक तथा 20 सैनिक इस गांव की ओर से सरकारी कर्मचारी थे। 1975 में इस गांव की साक्षरता मात्र 25 प्रतिशत थी जो आज 66 प्रतिशत से भी अधिक हो चुकी है। गांव की कुल आबादी में आज एक पी.एच.डी., दो एम.फिल, 22 एम.ए., 65 बी.ए., 11 बी.एस.सी., 190 हायर सैकेंडरी तथा 302 व्यक्ति सैकेंडरी शिक्षा प्राप्त हैं जबकि 1975 में मात्र दो स्नातक तथा 40 व्यक्ति सैकेंडरी उत्तीर्ण थे। बालिका शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा के प्रति भी तेजी से रुझान बढ़ा है।

1975 में गांववासियों के पास भौतिक सुख-सुविधाओं की बहुत कमी थी। उस समय मात्र एक टेलीविजन सैट (1977) और दो मोटर साइकिलें थीं। आज 87 टेलीविजन सैट, 48 स्कूटर/मोटर साइकिल, 18 ट्रेक्टर तथा 16 जीप/कार गांव में उपलब्ध हैं। प्रत्येक घर में कम-से-कम एक रेडियो अवश्य उपलब्ध है। पक्की सड़क के निर्माण के साथ ही स्थापित बस स्टैंड के आस-पास फोटोग्राफर, टेंट हाऊस, आरा मशीन, स्टेशनरी, फ्लोर मिल, वैल्डिंग वर्क्स, टायर रिपेयरिंग, हलवाई, प्राईवेट डाक्टर जैसे नए-नए व्यवसायों का विकास हुआ है जिनसे पहले ग्रामवासी पूर्णतया अनभिज्ञ थे। 1977 से पूर्व यहां पशुधन होते हुए भी विवाह अवसरों पर मावा इत्यादि शहर से लाया जाता था जबकि आजकल प्रतिदिन 30 किलोग्राम मावा तथा 300 लीटर दूध इस गांव से शहर भेजा जाता है। आर्थिक विकास, शिक्षा तथा जन-चेतना के साथ ही रोजगार के नए-नए साधनों को भी अपनाया जाने लगा है। आर्थिक विकास तथा शिक्षा के प्रसार के कारण शिशु मृत्यु-दर में गिरावट आई है। यह दर 80 प्रति हजार से गिर कर 20 प्रति हजार रह गई है। परिवार नियोजन के प्रति भी ग्रामवासियों का रुझान बढ़ा है। वर्तमान में औसतन 3 बच्चों के पश्चात परिवार नियोजन अपनाया जा रहा है। 1975 में मात्र 9 पुरुष और महिलाएं नसबंदी करवाए हुए थे जो आज बढ़कर 413 हो गए हैं। स्वास्थ्य के प्रति बढ़ी चेतना के कारण ही यहां दो सरकारी अस्पतालों के अतिरिक्त अन्य छह डाक्टर भी कार्यरत हैं।

आर्थिक विकास के कारण आज मात्र 26 घर कच्चे हैं जो 1975 में 98 थे। इसी कारण आगजनी की घटनाएं प्राय: रुक गई हैं। आर्थिक क्षेत्र की उन्नति के कारण प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ी है तथा बचत करने की प्रवृत्ति भी। 1975 में मात्र एक किराना स्टोर गांव में था। आज यहां आठ किराना स्टोर चल रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि गांववासियों का जीवन स्तर बेहतर हुआ है। गांववासी स्वीकारते हैं कि सड़क एवं बिजली सुविधा ने उनकी तकदीर ही पलट दी है।

ऐसा नहीं है कि विकास की इस प्रक्रिया में इस गांव को सकारात्मक परिणाम ही प्राप्त हुए हैं। विकास के साथ हत्या, विवाहों पर अपव्यय, आत्महत्याएं, अवैध प्रेम संबंध, शराबखोरी, पारिवारिक विघटन जैसी समस्याएं भी इन्हीं 10-15 वर्षों में उत्पन्न हुई हैं।

इसमें कोई दो राय नहीं कि गांव का विकास पिछले 20 वर्षों में बहुत तेजी से हुआ है किंतु सहकारी समिति, पशु चिकित्सालय तथा बैंक की स्थापना हो जाए तो विकास कार्यक्रमों को नए क्षितिज प्राप्त हो सकेंगे। ❑

(पृष्ठ 35 का शेष)

घाघ और भड्डुरी की सूक्तियां

अब यहां पर लोक कवि 'घाघ' की खेती की सिंचाई तथा बुवाई के मुहूर्त संबंधी सूक्तियां देखिए।

सिंचाई संबंधी सूक्ति—

सभी किसानी हैठी,
अगहनिया पानी जेठी।

—'अगहन में खेत सींचने से बढ़िया कोई किसानी नहीं है।'

धान-पान और खीरा,
तीनों पानी के कीरा।

—'धान, पान तथा खीरा (फल), ये पानी के जीव हैं। इन्हें पानी खूब देना चाहिए।'

बुवाई के मुहूर्त संबंधी सूक्ति देखिए—

चना चित्तरा चौगुना, स्वाती गेहूं होय।

—'चित्रा नक्षत्र में चना और स्वाती में गेहूं बोने से चौगुनी पैदावार होती है।'

बुवाई के ढंग के बारे में पढ़िए—

सन घना बन बेगरा, मेंढक फंदे ज्वार,
पैर-पैर पर बाजरा, करे दरिद्रै पार।

—'सन को घना, कपास को बीज़र, ज्वार को मेंढक की कुदान की दूरी पर और बाजरा को एक-एक कदम पर बोने से दरिद्रता दूर होगी और उपज घनी होगी।' ❑

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में अनुसूचित जाति के सरपंचों को आने वाली बाधाएं

रामनरेश वर्मा

समाज एक अखंड संगठन या व्यवस्था नहीं है, यह अनेक इकाइयों से बनता है। दूसरे शब्दों में समाज की कुछ निर्माणात्मक इकाइयां होती हैं। ये इकाइयां समाज में पाई जाने वाली समिति, संस्था, वर्ग, जाति आदि होती हैं। इनमें से प्रत्येक इकाई का समाज में एक निश्चित स्थान और एक निश्चित कार्य होता है। उदाहरणार्थ—जाति प्रथा का भारतीय समाज में एक निश्चित स्थान तथा कुछ निश्चित कार्य निर्धारित था।

इस जाति प्रथा के आधार पर भारतीय समाज व्यवस्था में अपनी-अपनी पंचायतें होती थीं, जिसमें अपनी जाति अथवा समुदाय से संबंधित विवादों का निपटारा होता था लेकिन भारत में विदेशियों के आक्रमण से इस परंपरागत पंचायती राज व्यवस्था का ह्रास हुआ।

देश स्वतंत्र हुआ, भारत का नया संविधान बना तो पंचायती राज व्यवस्था को पुन: जीवित किया गया और हमारे संविधान में यह निर्देश दिया गया कि राज्य ग्राम पंचायतों के निर्माण के लिए कदम उठाएगा और उन्हें इतनी शक्ति और अधिकार प्रदान करेगा कि वे स्वशासन की इकाई के रूप में कार्य कर सकें। साथ ही, पंचायती राज अधिनियम में जाति प्रथा के आधार पर पंचायत व्यवस्था को खत्म करके सभी जातियों के सदस्यों को समान रूप से भागीदार बनाने के लिए स्थान सुरक्षित रखे गए हैं।

संवैधानिक तौर पर यद्यपि अनुसूचित जातियों के लिए पंचायत व्यवस्था में स्थान सुरक्षित रखे गए हैं, लेकिन उनकी परंपरागत निर्योग्यताएं अभी समाप्त नहीं हुई हैं। पानिक्कर के अनुसार यह मान लेना सर्वथा गलत होगा कि अस्पृश्यता समाप्त होने की घोषणा कर देने से ही अनुसूचित जातियों की सामाजिक निर्योग्यताएं भी दूर हो गई हैं, ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी परंपरागत निर्योग्यताएं विद्यमान हैं।

अनुसूचित जाति सदियों से शोषित वर्ग रहा है, समाज के निर्माण एवं परिवर्तन से कोसों दूर रहा है। यद्यपि ग्राम विकास में यह वर्ग हिस्सा लेता था, लेकिन अपना मत नहीं रख सकता था। विकास के सभी अधिकार संपन्न तथा सामान्य वर्ग के हाथों में केंद्रित थे इसलिए अनुसूचित जाति वर्ग के व्यक्ति विकास के कार्यों से अनभिज्ञ थे। संविधान द्वारा अब अनुसूचित जाति के व्यक्तियों के लिए पंचायतों में विशेष व्यवस्था की गई है, फिर भी उन्हें बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है।

योजनाओं के क्रियान्वयन में आने वाली बाधा

शैक्षणिक कारक : सामाजिक कार्य के रूप में शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य में वह सामाजिक चेतना जाग्रत करना है, जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसे सक्रिय बना सके तथा सार्वजनिक कल्याण के लिए अपना योगदान प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित कर सके। अध्ययन में पाया गया कि सामान्य वर्ग के 10 प्रतिशत सरपंच अशिक्षित हैं, जबकि अनुसूचित जाति के 30 प्रतिशत सरपंच अशिक्षित हैं। सामान्य वर्ग की अपेक्षा अनुसूचित जाति के सरपंचों का अधिक अशिक्षित रहना योजनाओं को समझने में कठिनाई का कारण रहा है।

पारिवारिक पृष्ठभूमि : परिवार एक ऐसी संस्था है जो व्यक्ति को मानसिक संतोष, सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती है, जिससे व्यक्ति कोई भी कार्य निर्भीक होकर करता है। यह निर्भर होता है परिवार के स्वरूप पर, परिवार के अन्य सदस्यों के कार्यों पर। अध्ययन में पाया गया है कि अनुसूचित जाति के 60 प्रतिशत परिवार संयुक्त हैं, जबकि सामान्य वर्ग के 70 प्रतिशत परिवार संयुक्त हैं। इसी प्रकार 40 प्रतिशत एकाकी परिवार अनुसूचित जाति के और 30 प्रतिशत एकाकी परिवार सामान्य वर्ग के थे। अनुसूचित जाति के सरपंचों के एकाकी परिवार अधिक होना—उन्हें मानसिक संतोष प्रदान नहीं करता।

इसी प्रकार अनुसूचित जाति के 30 प्रतिशत सरपंचों के पिता पहले सरपंच रह चुके हैं, वहीं 50 प्रतिशत सामान्य वर्ग के। इसी तरह अनुसूचित जाति के 30 प्रतिशत सरपंच स्वयं पहले सरपंच रह चुके हैं, वहीं सामान्य वर्ग के 40 प्रतिशत। इस तरह अनुसूचित जाति के सरपंचों को सामान्य वर्ग के सरपंचों की अपेक्षा कम मार्गदर्शन एवं अनुभव प्राप्त है।

आर्थिक कारक : व्यक्ति को उसकी आर्थिक स्थिति के आधार पर सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। व्यवसाय किस प्रकार का था और किस प्रकार का है, जिसके आधार पर वह अन्य व्यक्तियों को प्रभावित करता है। अध्ययन से पता चला कि अनुसूचित जाति के 20 प्रतिशत सरपंचों का पूर्ण व्यवसाय स्वयं की खेती था, जबकि सामान्य वर्ग के 40 प्रतिशत सरपंचों का व्यवसाय स्वयं की खेती थी। इसी प्रकार अनुसूचित जाति के 30 प्रतिशत सरपंच पहले खेतिहर मजदूर थे, वहीं सामान्य वर्ग में कोई सरपंच खेतिहर मजदूर नहीं था। वर्तमान में 25 प्रतिशत अनुसूचित जाति के सरपंच, सरपंची के अलावा खेतिहर मजदूर हैं। इसके अलावा 60 प्रतिशत अनुसूचित जाति के सरपंचों के पास स्वयं के वाहन नहीं हैं, जिससे वह जनपद पंचायत से तत्परता के साथ संपर्क नहीं कर पाते।

जातिगत कारक : भारतीय ग्रामों में जाति ही अधिकांशत: एक व्यक्ति के कार्य स्तर, प्राप्त अवसरों तथा प्रतिद्वंद्विता को भी निश्चित करती है। इसी आधार पर अनुसूचित जाति के 30 प्रतिशत सरपंच चुनकर तथा सामान्य वर्ग के 70 प्रतिशत सरपंच चुनकर आए। अनुसूचित जाति के 50 प्रतिशत सरपंच आरक्षण द्वारा आए हैं। आरक्षण द्वारा आए हुए सरपंचों को उतना सम्मान नहीं मिलता, जितना मिलना चाहिए।

गांव में गुप्त चर्चा करने पर पाया गया कि 20 प्रतिशत अनुसूचित जाति के सरपंचों को जिसमें महिला तथा पुरुष दोनों सम्मलित हैं, गांव के अन्य वर्ग के अधिकतर लोग सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते हैं। इससे पता चलता है कि सरपंचों को कितने दबावों को झेलना पड़ता है।

अन्य कारक : अनुसूचित जाति के सरपंचों के सम्मुख आने वाली अन्य बाधाएं इस प्रकार हैं:

(1) अनुसूचित जाति के जितने भी सरपंच अशिक्षित हैं, उन्हें पंचायत नियमावली मालूम ही नहीं है। इस कार्य के लिए उन्हें सचिव या अन्य व्यक्तियों पर निर्भर रहना पड़ता है।

(2) अनुसूचित जाति के अधिकतर सरपंचों को सभी योजनाओं के बारे में भी मालूम नहीं होता कि कौन-सी योजना किस कार्य के लिए बनी है।

(3) अनुसूचित जाति के ज्यादातर सरपंचों को ग्रामीण क्षेत्र के दबंग व्यक्तियों के दबाव में कार्य करना पड़ता है।

(4) अनुसूचित जाति के 40 प्रतिशत सरपंचों ने बताया कि जनपद में प्रशासकीय कर्मचारी उनकी नहीं सुनते, जिससे कार्य में देरी होती है, कभी-कभी कार्य होता ही नहीं।

निष्कर्ष: संविधान द्वारा अनुसूचित जाति के सरपंचों को ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में भागीदार तो बनाया गया है, लेकिन व्यवहार में उन्हें पर्याप्त अधिकार नहीं दिए गए हैं। आज भी अनुसूचित जाति के सरपंच मानसिक रूप से कुंठित हैं, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्र में सामान्य वर्ग के लोग अभी भी उन्हें स्वीकार नहीं कर पाए हैं। उनके मन में अभी भी कहीं न कहीं भेदभाव की भावना विद्यमान है। आवश्यकता है कि अनुसूचित जाति के सरपंचों के आत्म-विश्वास को जगाया जाए और उन्हें उनके अधिकारों से परिचित कराया जाए, जिससे वह अपने आपको दूसरे वर्ग से हीन न समझें और ग्रामीण समाज में परिवर्तन के लिए अपना योगदान प्रदान कर सकें।

बाधाएं दूर करने के सुझाव

प्रत्येक समस्या का कोई न कोई हल अवश्य होता है। स्वतंत्रता के बाद जाति प्रथा को कम करने के लिए कानून बनाए गए हैं, लेकिन वह कारगर सिद्ध नहीं हो रहे हैं। इसके लिए आवश्यक है कि समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाया जाए। शोध प्रबंध के अध्ययन के आधार पर ये सुझाव दिए जा सकते हैं:

- आरक्षण द्वारा सरपंच का पद उन्हीं व्यक्तियों को दिया जाना चाहिए, जो शिक्षित हों।
- आरक्षण द्वारा चुने हुए सरपंचों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए।
- आरक्षण द्वारा भरे गए सरपंच को भी उसी दृष्टि से देखना चाहिए, जैसे चुनकर आए हुए सरपंचों को देखा जाता है।
- गांव के रीति-रिवाजों, मूल्यों तथा आदर्शों में परिवर्तन की जरूरत है।
- गांव के शक्तिशाली व्यक्तियों से सरपंचों की सुरक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए।
- सरपंचों को उनके अधिकारों से संबंधित पूरी जानकारी की व्यवस्था करनी चाहिए और उन्हें पद से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों से परिचित कराना चाहिए।
- दोनों वर्गों के ग्रामीणों द्वारा सभी वर्गों के सरपंचों को सहयोग देने की भावना के विकास की जरूरत है।
- ग्रामीणों के सभी वर्गों के लोगों में यह विश्वास जगाना चाहिए कि कोई सरपंच किसी एक वर्ग के लिए नहीं, वरन संपूर्ण गांव के विकास के लिए कार्य करते हैं।
- सरपंचों को समय-समय पर फर्नीचर तथा स्टेशनरी उपलब्ध कराते रहना चाहिए।
- सरपंचों की शिकायतों के निराकरण के लिए उचित व्यवस्था करनी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ

- भारतीय सामाजिक संस्थाएं, रविन्द्र नाथ मुखर्जी
- भारत में स्थानीय स्वशासन, एस.आर. महेश्वरी
- परिवार एवं समाज, टोंग्या एवं पोथन
- वैज्ञानिक सामाजिक अनुसंधान एवं सर्वेक्षण के मूल तत्व, डा. श्यामधर सिंह
- आधारभूत समाजशास्त्रीय अवधारणाएं, एस.एस. शर्मा एवं श्रीमती स्मिता शर्मा
- म.प्र. पंचायती राज अधिनियम 1993 तथा पंचायत निर्वाचन नियम, आर.डी. जैन
- म.प्र. सामान्य ज्ञान, जैन एवं भटनागर

शिक्षा गारंटी योजना

आशीष खरे

आज हम सबमें ऐसा कोई नहीं होगा जो आगे बढ़ना नहीं चाहता हो। समय के साथ-साथ चलना ही तो जिंदगी है और आगे बढ़ने और कुछ पाने की पहली सीढ़ी है—शिक्षा। शिक्षा ही एक ऐसा सशक्त माध्यम है जो हम सबको अपनी मंजिल पाने और समाज में सम्मान दिलाने में सहायक होती है। बिना पढ़ाई-लिखाई के जिंदगी के बड़े सफ़र को पार करना बहुत कठिनाई भरा होता है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था कि देश के विकास के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की है कि हम सब अपने-अपने गांव का विकास करें। गांवों के विकास के साथ उत्पादन में बढ़ोतरी करना, हरेक के लिए भोजन और आवास मुहैया कराना जरूरी है और इन सबसे ऊपर जो सबसे जरूरी है, वह है—हरेक के लिए अनिवार्य शिक्षा।

गांधी जी का मानना था कि शिक्षा ही वह सशक्त माध्यम है जो इस देश का सही मायने में विकास कर सकती है। हम अंग्रेजों की गुलामी से तो आजाद हो गए हैं लेकिन हमें आजाद होना है—अशिक्षा और अज्ञानता की बेड़ियों से।

आजादी के पचास वर्षों के विकास की गति को मुड़कर देखते हैं तो हम पाते हैं कि हमारे देश ने विकास के नए-नए आयाम तय किए और यह तरक्की बहुत सुनियोजित तरीके से हासिल की। उद्योग लगे, उत्पादन बढ़ा, रोज़गार के नए-नए अवसर तलाशे गए। लेकिन इन सबके बीच यदि कमी महसूस की गई तो वह है—शिक्षा के विकास की।

देश में नए-नए विश्वविद्यालय, प्राथमिक शालायें एवं अनेक संस्थाएं स्थापित की गईं, लेकिन इन सबकी पहुंच दूर-दराज बसे गांवों की जनता से बहुत दूर थी। नतीजा यह हुआ कि बच्चों को मीलों चल कर स्कूल जाना पड़ा।

मध्य प्रदेश सरकार ने इस बात को महसूस किया कि ग्रामीण बाहुल्य प्रदेश का विकास करना है तो सबसे पहले प्रदेश के सभी गांवों का समुचित विकास हो और वहां पर बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं। गांव के लोगों को जागरूक बनाने और विकास की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए इस बात को महसूस किया गया कि गांव के प्रत्येक बच्चे को शिक्षित किया जाए।

मतलब साफ था कि पढ़ाई-लिखाई की सुविधाएं शहर और तहसील के साथ-साथ हर दिशा के अंतिम गांव तक पहुंचाई जाएं और हरेक गांव में एक स्कूल की अनिवार्य रूप से स्थापना की जाए।

प्रशासनिक अमले ने योजना बना डाली। काम कठिन था, लक्ष्य भी आसान न था, लेकिन जहां चाह वहां राह। एक जनवरी 1997 'शिक्षा गारंटी योजना' के माध्यम से इस जिम्मेदारी को पूर्ण करने का जिम्मा पंचायतों को सौंप दिया गया।

'शिक्षा गारंटी योजना' का मूल उद्देश्य हरेक के लिए अनिवार्य रूप से शिक्षा-सुविधा मुहैया कराना है। प्रदेश में जहां कहीं भी आदिवासी इलाकों में 25 बच्चे और दूसरे इलाके के किसी गांव में 40 बच्चे हैं और उनके आस-पास के एक किलोमीटर दायरे में कोई प्राथमिक शाला नहीं है और यदि अभिभावक पंचायत के माध्यम से स्कूल खोलने की मांग करते हैं तो जनपद पंचायत के अनुमोदन पर 90 दिन के भीतर वहां पर शिक्षा की यह सुविधा उपलब्ध करा दी जाती है। शिक्षक की नियुक्ति भी पंचायत द्वारा की जाती है।

'शिक्षा गारंटी योजना' का मतलब साफ हो चुका था। सरकार इस योजना के माध्यम से अधिक से अधिक बच्चों को स्कूलों में दाखिल कराना चाहती थी। सरकार ने यह काम किया—पंचायतों के माध्यम से ताकि किसी भी बच्चे के पढ़ने-लिखने में स्कूल की दूरी आड़े न आ सके।

जिला पंचायतों ने इस जिम्मेदारी को बहुत योजनाबद्ध तरीके से संपादित किया और एक साल के अंदर पूरे प्रदेश में प्रतिदिन 40 स्कूल खोलने की औसत से कुल 16,439 नए स्कूल खोले गए।

ऐसा एक ही गांव है—होशंगाबाद जिले के विकास खंड सोहागपुर का ग्राम खपरिया। लगभग 50 से 70 बच्चे थे इस गांव में और पढ़ाई के नाम पर एकमात्र स्कूल था गांव से दो किलोमीटर की दूरी पर। नन्हे-नन्हे शरीर पर बस्तों के बोझ तले इतनी दूरी रोज तय करना संभव नहीं था। अभिभावक भी बच्चों के भविष्य को लेकर चिंतित थे।

ग्राम खपरिया मुख्य सड़क गूजर खेड़ी से दो कि.मी. दूरी पर है। यहां के बच्चों को पढ़ने के लिए पैदल सुनसान रास्ते से गुजरकर गूजरखेड़ी जाना पड़ता था। इस कारण बहुत-से मां-बाप अपने बच्चों को स्कूल भेजने में संकोच करते थे। परिणामस्वरूप गांव के अधिकांश बच्चे शिक्षा से वंचित होने लगे थे।

राज्य सरकार की इस कल्याणकारी नीति का लाभ लेते हुए ग्राम के लोगों ने 'शिक्षा गारंटी योजना' के तहत स्कूल खोलने हेतु प्रस्ताव ग्राम

जिला	स्कूलों की संख्या
खरगोन	1688
झाबुआ	1173
धार	874
बस्तर	861
सीधी	765
मंडला	726
बिलासपुर	712
शहडोल	635
जबलपुर	632
रायपुर	548
रायगढ़	521
दमोह	227
सरगुजा	508
शिवपुरी	468
गुना	456
छिन्दवाड़ा	446
ग्वालियर	386
सतना	359
बालाघाट	352
सिवनी	268
सागर	248
मुरैना	244
राजगढ़	242
बैतूल	230
विदिशा	219
रीवा	208
खंडवा	200
रतलाम	188
टीकमगढ़	184
रायसेन	183
पन्ना	171
नरसिंहपुर	163
भिंड	148
छतरपुर	137
होशंगाबाद	136
देवास	126
इंदौर	118
राजनांद गांव	118
भोपाल	110
दुर्ग	93
शाजापुर	89
उज्जैन	82
मंदसौर	76
सीहोर	70
दतिया	51

पंचायत के समक्ष रखा। ग्राम पंचायत ने प्रस्ताव पारित कर जनपद पंचायत को भेज दिया।

जनपद पंचायत के अनुमोदन से ग्राम पंचायत ने खपरिया गांव में एक स्कूल खोला और गांव के ही एक पढ़े-लिखे युवक को शिक्षाकर्मी के रूप में नियुक्त किया। शासन की जन-कल्याणकारी योजना के कारण एक युवक को उसके ही गांव में रोजगार मिला और 'शिक्षा गारंटी योजना' के कारण वर्षों से शिक्षा से वंचित गांव के बच्चों को गांव में ही शिक्षा केंद्र मिला। अभिभावकों को मिला—बच्चों का सुरक्षित भविष्य और आने वाले कल के सुनहरे सपने। अज्ञानता और अशिक्षा की बेड़ियों से मुक्ति पाने का समय आ गया 'शिक्षा गारंटी योजना' के माध्यम से।

अब आशा ही नहीं, बल्कि पूर्ण विश्वास है कि राष्ट्रपिता के सपनों को पूरा होने से कोई रोक नहीं सकता। ❑

कुछ तथ्य

महाराज

बीज तभी उगते हैं,
जब उन्हें नमी में बोया जाता है।
धन तभी जुड़ता है,
जब प्रतिदिन कुछ बचाया जाता है।

भाग्य तभी चमकता है,
जब विवेक के प्रकाश में,
स्वेद बहाया जाता है।
सपने तभी होते अपने,
जब उन्हें साधना-संगीत
सुनाया जाता है।

परिवार की गाड़ी तभी चलती है सही,
जब उसमें बैठने वालों की
संख्या को
सीमित रखा जाता है।
मंजिल तभी मिलती है,
जब सही दिशा में चला जाता है। ❑

भारत की अमूल्य धरोहर : अमृत फल आंवला

शैलेश त्रिपाठी *

अमृत फल आंवला भारतीय मानव जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह एक ऐसा अद्वितीय फल है जिसका वर्णन वेद, पुराण, रामायण, चरक संहिता, प्रभु संहिता, कालीदास रचित साहित्य तथा कादम्बरी में किया गया है।

आयुर्वेद में तो आंवले को अमृत फल या धात्रीफल (जो धाय की भांति पालन-पोषण करे) की संज्ञा दी गई है। इस फल को रसायन की श्रेणी में रखा गया है। रसायन गुणकारी द्रव्य को कहा जाता है जो हर काल तथा हर जगह प्राणी-मात्र के लिए लाभदायक हो, शरीर के प्रत्येक अंग को स्फूर्ति प्रदान करे तथा जिसमें समस्त व्याधियों को दूर करने की क्षमता हो। आयुर्वेद का शायद ही कोई ऐसा प्रकरण हो जिसमें आंवले का उल्लेख न किया गया हो। इन्हीं सब गुणों के विद्यमान होने के कारण आंवले को अमृत फल के नाम से संबोधित किया गया है। अश्विनी कुमार ने आंवले के रासायनिक प्रयोग से वृद्ध च्यवन ऋषि को जवान बना दिया था। आज वही रासायनिक प्रक्रिया च्यवन ऋषि के नाम से 'च्यवनप्राश' के अभिधान से बहुसुश्रुत है। महर्षि चरक के अनुसार संसार में जितने भी अवस्था-स्थापक द्रव्य हैं, उसमें आंवला प्रधान है।

आंवले से दीर्घायु, स्मरणशक्ति, बुद्धि, तंदुरुस्ती, नवयौवन, तेज, कांति, स्वर, उदारता, शारीरिक इंद्रियों को बल, वाणी की सिद्धि और वीर्य की पुष्टि का गुण अन्य रसायनों से कई गुना अधिक है। आंवले के फल का ही नहीं, अपितु उसके दूसरे अंग पत्ती, छाल, बीज आदि का औषधीय जगत में प्रयोग होता है।

आंवले के विविध प्रयोग

पत्ती—पत्ती को जल में उबालकर कुल्ला करने से मुंह के छाले नष्ट हो जाते हैं। कोमल पत्तों का मठ्ठा बनाकर देने के अजीर्ण और अतिसार में लाभ होता है।

बीज—बीज को कूटकर गरम पानी में उबालकर आंख धोने से बहुत दिनों की दुखती हुई आंख को आराम मिलता है।

*उद्यान विज्ञान विभाग, गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर

फल—आंवला ग्राही है जिसके कारण आमाशय गर्भाशय, नेत्र आदि को शक्ति प्रदान करता है। मस्तिष्क के लिए अत्यंत बलदायक है क्योंकि यह मस्तिष्क के वाष्पोरोहन को रोकता है तथा शरीर के समस्त तंत्रों पर अनुकूल असर डालता है।

मातृ-शिशु कल्याण में प्रयोग

- गर्भावस्था में माता को दौरा आता हो तो फल का रस पीने से लाभ होता है।
- नवजात शिशु को अल्प मात्रा में स्वर्ण, घी तथा मधु को आमलकी पाउडर में मिलाकर देने से शिशु में रोगों से लड़ने की क्षमता उत्पन्न होती है।
- मधुमेह में आमलकी चूर्ण, हरिद्रा तथा गुड़ची समान मात्रा में लेने से लाभ होता है।
- मुख पाक में आंवले की छाल मां के दूध में पीस कर पेस्ट बनाकर लगाने से लाभ होता है।
- प्रसव के बाद आंवले को जल में उबाल कर उस जल से प्रसूता को स्नान कराने से लाभ होता है।
- गर्भावस्था के दौरान या प्रसव के बाद मूत्र में जलन या मूत्रकृच्छ हो तो उसमें आमलकी चूर्ण खाने से लाभ होता है।

आंवले के औषधीय गुण

प्रदर बहुमूत्र : आंवले की गुठली के अंदर बीज होते हैं। उन बीजों के चूर्ण को शहद और शक्कर के साथ प्रयोग करने से श्वेत और रक्त प्रदर में लाभ होता है। बीजों के चूर्ण को शहद के साथ चाटने से बहुमूत्र में लाभ होता है।

सफेद बाल : आंवला और आम की गुठली दोनों को समान मात्रा में लेकर पीस कर बालों पर लेप करने से बाल काले, बड़े, मुलायम और चमकदार हो जाते हैं।

(शेष पृष्ठ 48 पर)

कमर और पीठ दर्द से कैसे बचें

डा. वीणापाणि सिंह

कमर और पीठ का दर्द आज एक आम समस्या बन गई है। चालीस वर्ष की आयु के आस-पास पहुंचते ही बहुत-से लोग इस तकलीफ की शिकायत करते हैं। यह कमर तथा पीठ का दर्द उन लोगों में ज्यादा पाया जाता है, जो शरीर से स्थूल-काय होते हैं तथा जिनका व्यवसाय बैठ कर काम करने का है। घरों में गृहणियां प्राय: इस दर्द की शिकायत करती हैं, जिन्हें लंबे समय तक रसोई में झुक कर काम करना पड़ता है। जिन लोगों की कार्य-प्रणाली कुर्सी पर बैठ कर काम करने की है, उनमें से भी ज्यादातर लोगों को, जो ठीक ढंग से बैठते नहीं हैं, इस दर्द की शिकायत हो जाती है। इसी प्रकार झुक कर, बैठ कर वाहन चलाने वाले चालक भी प्राय: कमर तथा पीठ दर्द की शिकायत करते हैं।

इस प्रकार उत्पन्न कमर तथा पीठ दर्द का मुख्य कारण यह है कि हम सभी रोज़मर्रा की जिंदगी में कुछ साधारण बातों के प्रति लापरवाह होते जा रहे हैं और हममें से ज्यादातर लोगों को इस बात का पता ही नहीं है कि हमें किस स्थिति में खड़े होना है, कैसे बैठना है, कैसे झुकना है व काम करना है तथा कैसे सोना है या वाहन चलाना है आदि। इन सभी स्थितियों के सही ज्ञान से काफी हद तक हम पीठ तथा कमर के दर्द की समस्या से बच सकते हैं।

आइए, सबसे पहले हम इस बात पर विचार करें कि यह दर्द होता क्यों है? हमारी रीढ़ की हड्डी छोटी-छोटी अनेक हड्डियों के समूह से निर्मित है, जो आपस में कई पदार्थों से जुड़ी होती है। ऐसी किन्हीं दो हड्डियों के मध्य छिद्र में से संवेदनशील नाड़ियां निकलती हैं। जब हम गलत तरीके से बैठते या लेटते हैं या कोई कार्य करते हैं तो इन संवेदनशील नाड़ियों तथा उसके साथ के अन्य अंगों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है और बार-बार या निरंतर इस दुष्प्रभाव के कारण हमें पीठ तथा कमर दर्द की शिकायत हो जाती है।

सुबह और शाम के समय करने के व्यायाम

- पेट के बल लेटें और हाथों को पीठ के पीछे की ओर ले जाएं।
- सिर और दोनों कंधों को जमीन से ऊपर उठाएं और पीठ को अंदर की ओर ले जाएं। ऐसा करते हुए तीन तक गिनें।
- सिर और कंधों को नीचे लाकर फिर पहले वाली स्थिति में आ जाएं। अब आराम की अवस्था में होकर दस तक गिनें।
- इस व्यायाम को प्रात: और सायंकाल दस बार करें।

निर्देश

गलत | सही

1. जमीन से कोई वस्तु उठाते समय अपने घुटनों को मोड़ कर उठाएं। पीठ को मोड़ कर या झुका कर न उठाएं।

2. खड़े होकर मेज पर काम करते समय, खड़े होकर कपड़े प्रेस करते हुए, सिंक पर काम करते हुए या रसोई में काम करते हुए पीठ एकदम सीधी रखें।

3. कुर्सी पर बैठ कर काम करते हुए या गाड़ी चलाते समय पीठ सीधी रखने के लिए किसी कुशन या तकिये को पीठ के पीछे रखें।

4. घुटने के बल काम करते समय पीठ को ऊपर से खाली रखें।

5. सोते समय सख्त पलंग या दीवान इस्तेमाल करें।

यदि हम अपने दैनिक जीवन में थोड़ी-सी सावधानी बरतें तथा कुछ व्यायाम नियमित रूप से करें तो इस प्रकार उत्पन्न कमर तथा पीठ के दर्द से पूर्ण रूप से बचा जा सकता है। इस दर्द से बचने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है—

जमीन से कोई वस्तु उठाते समय : जमीन पर रखी किसी भी वस्तु, खासतौर पर भारी वजन वाली वस्तु को उठाते समय हमेशा अपने घुटनों को मोड़ कर उसे उठाएं। कभी भी अपनी पीठ को मोड़ कर या झुका कर उसे न उठाएं। इस अवस्था में पीठ सदैव सीधी रखें।

मेज़ पर काम करते समय (खड़े होकर) : जब भी आप खड़े होकर काम कर रहे हैं तो अपनी पीठ एकदम सीधी रखें। खड़े होकर काम करने की कुछ अवस्थाएं हैं— रसोई में काम करना, कपड़े प्रैस (इस्त्री) करना, सिंक पर काम करना आदि।

बैठना : कभी भी, कुर्सी पर बैठ कर काम करते समय आपको अपनी पीठ को सीधा रखना बहुत आवश्यक है। ऐसा करने के लिए आप किसी कुशन या तकिये को पीठ के पीछे नीचे की ओर रख सकते हैं। ऐसी ही स्थिति वाहन चलाते समय (कार आदि) भी

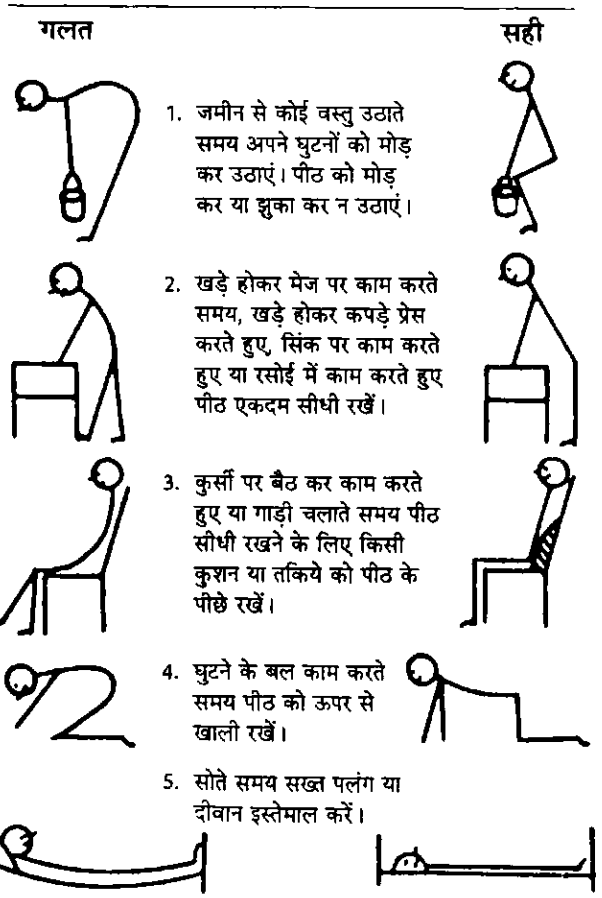

आती है, वहां भी आप ड्राईवर की सीट पर पीठ की ओर कुशन या तकिया आदि रख सकते हैं ताकि पीठ सीधी रहे और किसी भी अवस्था में उसे मोड़ना या झुकाना न पड़े।

घुटने के बल काम करते समय : घुटने के बल काम करते समय (जैसे फर्श पर पोंचा लगाना आदि) प्राय: लोग पीठ को धनुषाकार स्थिति में मोड़ लेते हैं। यह अवस्था पीठ के लिए हानिकारक होती है। अत: घुटनों के बल काम करते समय घुटनों को जमीन से टिका कर पीठ को ऊपर से खाली आकार में रखें ताकि वह सीधी रहे और किसी भी स्थिति में उसे मोड़ना न पड़े।

सोते समय : सोने के लिए सदैव सख्त पलंग या दीवान या बैड का इस्तेमाल करें। ऐसी चारपाई, जो सोते समय नीचे की ओर धंस जाती है, पर लेटने से पीठ तथा कमर दर्द हो सकता है। सख्त पलंग का उपयोग करते समय यह भी ध्यान रखें कि उस पर बिछा गद्दा भी सख्त पदार्थ का बना हो। हां, गद्दे की सबसे ऊपर की सतह पर फोम आदि लगाया जा सकता है ताकि वह शरीर पर चुभे नहीं।

इन सभी बातों का ध्यान रखते हुए हमें चाहिए कि हम कुछ ऐसे व्यायाम भी करें, जिससे पीठ तथा कमर दर्द से बचा जा सकता है। इन व्यायामों में एक है—

- सर्वप्रथम जमीन पर (चटाई आदि बिछा सकते हैं) पेट के बल लेट जाएं; फिर हाथों को पीठ के पीछे ले जाएं।
- अब सिर तथा दोनों कंधों को जमीन से उठाएं और अपनी पीठ को अंदर की ओर ले जाएं। इस प्रकार करते हुए तीन तक गिनती गिनें।
- अपने सिर तथा कंधों को नीचे लाकर पुन: पहले वाली स्थिति में आ जाएं। इस आराम की अवस्था में दस तक गिनती गिनें।
- इस व्यायाम को प्रतिदिन प्रात:काल और सांयकाल दस बार दोहराएं। व्यायाम करते समय मन शांत रखें।

इस प्रकार थोड़ी-सी सावधानी और व्यायाम द्वारा हम पीठ तथा कमर दर्द जैसी निरंतर परेशान करने वाली समस्या से बच सकते हैं। अत: अंग्रेजी की कहावत 'प्रीवेंशन इज बैटर दैन क्योर' अर्थात 'इलाज से परहेज भला', के सिद्धांत पर अमल करते हुए हमें इन सभी बातों का ध्यान रखना चाहिए। ❑

(पृष्ठ 46 का शेष) **भारत की अमूल्य धरोहर : अमृत फल आंवला**

रक्तपित्त, अम्लपित्त : रक्तपित्त में दही के साथ तथा अम्लपित्त में शक्कर के साथ आंवले का प्रयोग हितकर माना गया है।

कब्ज : रात को एक चम्मच पीसा हुआ आंवला, पानी या दूध के साथ लेने से प्रात: शौच खुलकर आता है। आंतें तथा पेट साफ हो जाता है और कब्ज की शिकायत भी दूर हो जाती है।

स्मरणशक्ति वर्धक : नित्य प्रति प्रात: आंवले का मुरब्बा खाने से स्मरणशक्ति तीव्र हो जाती है।

हृदय विकार : आंवले या आंवले का मुरब्बा चांदी के वर्क में लपेटकर खाने से हृदय को बल मिलता है और हृदय के सभी विकार दूर हो जाते हैं।

बवासीर : सूखे आंवले को बारीक पीसकर एक चाय की चम्मच भरकर सुबह-शाम दो बार छाछ या गाय के दूध से लेने से जल्दी आराम हो जाता है।

पत्थरी : आंवले का चूर्ण मूली के साथ खाने से मूत्राशय की पथरी में लाभ होता है।

आंवला निर्मित रसायन और औषधियां

च्यवनप्राश : इसके सेवन से श्वास तथा दमा और खांसी का नाश होता है। मेधा स्मृति, कांति और दीर्घायु प्राप्त होती है। वृद्धों और बालकों के अंगों को पुष्टि प्रदान करता है।

आमलकीय रसायन : 3 से 6 मास तक दिन में दो बार गोदुग्ध के साथ लेने से वीर्य पुष्ट होता है तथा पित्त की शांति होती है।

आमलकी घृत : बुढ़ापा दूर करता है।

आमलकी अवलेह : 1/2 तोला दूध के साथ सेवन करने से भी बुढ़ापा दूर होता है।

धात्री लौह : एक माशे से दो माशे तक लेने से पांडु, कमला, अजीर्ण, अम्लपित्त आदि रोग दूर होते हैं। इसे भोजन से पूर्व 3 माशे घी तथा 6 माशे शहद के साथ लेने से वायु संबंधी व्याधियां दूर हो जाती हैं। भोजन के उपरांत लेने से खट्टी डकारें, हृदय की जलन, परिणम शूल, उदर शूल दूर होते हैं।

महातिक्त घृत : एक से दो तोला सुबह-शाम ठंडे जल के साथ लेने से कोढ़, वात, रक्तपित्त, खूनी बवासीर, अम्लपित्त, खुजली, पांडु, कमला, कंठमाला इत्यादि कष्ट-साध्य स्थिति में पहुंचे हुए रोग नष्ट हो जाते हैं। ❑

तार पञीकरण संख्या : डी (डी एन) 12057 98
आई एस.एस एन 0971 8451
भुगतान के बिना डी.पी एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने
अनुमति (लाइसेंस) यू (डी एन) 55

P&T Regd. No. D (DN)
ISSN 0971-8451
Licensed under U (DN)
to post without pre-payment at DPSO, Delhi

श्रीमती सुरिन्द्र कौर, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली 110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित